बाल कहानियां भाग-2

मूर्ति का रहस्य

रमेश गुप्त



बाल कहानियां भाग-2

मूर्ति का रहस्य

रमेश गुप्त

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

फाल्गुन 1909 ● मार्च 1988

मूल्य : रु. 11.00

निदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित।

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

- सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001
- कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, बम्बई-400038
- 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069
- एल० एल० आडीटोरियम, 736, अन्नासलै, मद्रास-600002
- बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004
- निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, त्रिवेन्द्रम-695001
- 10-बी०, स्टेशन रोड, लखनऊ-226019
- राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डेन्स, हैदराबाद-500004

संजय प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित।

प्रकाशकीय

कहानियां बच्चों का मानसिक भोजन होती हैं। बच्चों के सम्पूर्ण विकास के लिए, उनके शरीर व मन—दोनों की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए। जैसे अच्छा व संतुलित भोजन उनके शरीर को पुष्ट बनाता है, वैसे ही प्रेरणादायी एवं शिक्षाप्रद कहानियां उनके मानसिक जीवन को समृद्ध बनाती हैं।

मानसिक संसार के निर्माण में तीन तत्व प्रधान हैं—कल्पना, तर्क व भावना। बालकों को ऐसा साहित्य मिलना चाहिए, जो उन्हें कल्पनाशील बना सके, उनमें तार्किक व यथार्थ-परक दृष्टि विकसित कर सके और साथ ही उनमें संवेदना का विकास कर सके। दुर्भाग्यवश बच्चों के लिए ऐसे संतुलित साहित्य की कमी है।

प्रकाशन विभाग ने इस कमी को पूरा करने के लिए एक नई शृंखला 'बाल कहानियां' शुरू की है। प्रस्तुत पुस्तक इसी शृंखला की दूसरी कड़ी है। इस पुस्तक में कहानियों के साथ आकर्षक रेखाचित्र भी दिए गए हैं, जो बच्चों को आकर्षित करने में निस्संदेह सफल होंगे।

लेखक ने सामाजिक व पारिवारिक जीवन के विविध पक्षों को छूने वाली कहानियां लिखी हैं, जो बालकों को रुचिकर तो लगेंगी ही, साथ ही उन्हें प्रेरणा भी देंगी। आशा है, बच्चे इस पुस्तक से अवश्य लाभान्वित होंगे।

डा० श्याम सिंह शशि
निदेशक

विषय-सूची

1. ईमानदारी

तीसरा पीरिएड इतिहास का था। मिस कपूर छुट्टी पर थीं और किसी अन्य अध्यापक का प्रबंध नहीं हो पाया। जब मानीटर ने आकर यह सूचना दी, तो पलभर में पूरी क्लास खाली हो गई।

लड़कियों की टोली लाईब्रेरी में चली गई। विकास अपने आठ-दस साथियों को लेकर खेल के मैदान में क्रिकेट खेलने चला गया। सुहास भी अपनी मित्र-मंडली के साथ बाहर जाने लगा। द्वार तक पहुंचकर वह ठिठका। वह लौटकर पंकज के पास आया और बोला, "चल रहे हो, मित्र ?"

पंकज अपनी सीट पर अकेला बैठा था। वह अपने स्कूल की पत्रिका के लिए एक कहानी लिखने की सोच रहा था। उसका मित्र राजीव पत्रिका का सहायक सम्पादक है। वह कई बार कह चुका था कि 'बसंत' अंक के लिए कहानी लिख दो। अब चालीस मिनट खाली थे। पंकज ने इस समय का सदुपयोग करना चाहा।

"अरे मित्र, क्या गोबर-गणेश की तरह चुप बैठे हो, चलते हो ?" सुहास ने पंकज का कंधा पकड़कर उसे झकझोर दिया।

"कहां जा रहे हो तुम लोग ?" पंकज ने पूछा।

"कैंटीन।" सुहास ने उत्तर दिया।

"आओ पार्टनर, तुम्हें पीज़ा और आइसक्रीम खिलाते हैं।" सुहास का साथी कमल बोला।

पंकज का मन वितृष्णा से भर गया। पता नहीं, सुहास के घर नोटों का कौन-सा पेड़ लगा है ? हर दिन वह सौ-सौ के कई नोट लेकर स्कूल आता है। खुद पर खूब पैसे उड़ाता है और दोस्तों को भी मौज-मस्ती कराता है। इसीलिए आठ-दस दोस्त उसके चमचे बन गए हैं। वे हर समय उसके साथ रहते हैं।

"क्या पूरा पीरिएड सोचने-विचारने में निकाल दोगे ? चलना हो तो चलो, वरना हम लोग जाते हैं।" सुहास ने रौब दिखाते हुए कहा।

"तुम लोग चलो। मुझे कुछ काम है।" पंकज ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"किताबी कीड़े पीज़ा नहीं खाते, वे किताब-कापियां चाटते हैं।" सुहास ने व्यंग्य कसा।

उसकी पूरी मित्र-मंडली ने ठहाका लगाया और वे लोग हंसते हुए कमरे से बाहर निकल गए। पंकज कापी और बॉल-पेन लेकर कहानी लिखने बैठ गया। किस विषय पर कहानी लिखे, वह विचारमग्न-सा बैठा रहा। तभी उसके मन में एक रोचक विचार आया। क्यों न सुहास के ऊपर कहानी लिख डाले ? ठीक है। यह अच्छा विषय है। उसने कहानी लिखनी शुरू कर दी। इसमें उसने सुहास का नाम नीरज कर दिया।

नीरज एक अमीर लड़का था। वह आठवीं कक्षा में पढ़ता था। पढ़ने से ज्यादा उसे पहनने-ओढ़ने, खाने-पीने का शौक था। हर दिन वह नए-नए कपड़े पहनकर आता और अपने साथियों को रौब दिखाता, "यह देखो मेरा नया सूट, मेरे पापा जापान से लाए थे। मेरे पापा अमरीका गए, तो वहां से मेरे लिए एक बहुत खूबसूरत नाइट सूट लाए थे। पता नहीं क्यों, हमारे स्कूल वाले कब स्कूल-ड्रेस लागू करेंगे ? सारे स्कूलों में बच्चे स्कूल-ड्रेस पहनकर आते हैं। पर हमारे यहां तो फैंसी ड्रेस प्रतियोगिता होती रहती है।"

नीरज रोज कोई-न-कोई खूबसूरत तथा विचित्र आयातित वस्तु स्कूल लाता और उसे अपने साथियों को दिखाता। पता नहीं, उसके मम्मी-पापा उसको कितना जेब-खर्च देते थे ? हर समय उसकी जेब में सौ-सौ के कई नोट होते। वह अपने कई साथियों को कैंटीन या फिर किसी पास के पांच सितारा होटल में ले जाता। नाश्ता-पानी कराता और फिर नेता की तरह खुश हो जाता।

जिन बच्चों को सीमित जेब-खर्च मिलता, वे नीरज की इस अमीरी को देखते और उनके अंदर हीन भावना उत्पन्न हो जाती।

एकाएक पंकज ने देखा कि उसके बॉल-पेन की स्याही खत्म हो गई है। कहानी अच्छी-खासी चल पड़ी थी। पर उसके पास न पेंसिल थी, न कोई दूसरा पेन। निराश और उदास-सा वह उठा। उसने कापी बंद कर दी और कमरे के बाहर आ गया। जैसे ही वह बरामदे में पहुंचा, उसका पांव किसी वस्तु से टकराया। वह रुका। झुककर उसने नीचे देखा। जमीन पर एक खूबसूरत कलाई घड़ी पड़ी थी।

उसने घड़ी उठाई और जेब में रख ली। वह सीधा 'खोया-पाया दफ्तर' गया। वहां ताला बंद था। वह खेल के मैदान के पास आकर खड़ा हो गया। विकास बैटिंग कर रहा था। लगातार तीन गेंदों पर उसने तीन चौके लगाए थे। उसके साथी ताली बजाकर उसका उत्साह बढ़ा रहे थे।

तभी पंकज को अपनी पीठ के पीछे दो विद्यार्थियों की रोचक बातचीत सुनाई दी।

—यार, कैंटीन चलकर पार्टी दे। तेरे मजे आ गए। किताबों की दुकान के बाहर मुफ्त में बीस रुपये का नोट पड़ा मिल गया।

—मैं इसे खर्च नहीं करूंगा। यह किसी की अमानत है।

—पागल हो गया है, यार ? तूने यह कहावत नहीं सुनी है :

जो खोवत है सो रोवत है,
जो पावत है सो नाचत है।

—मैं इसे 'खोया-पाया दफ्तर' में जमा करा दूंगा।

—तू तो मूर्ख है। अरे इस नोट पर किसी का नाम लिखा है क्या ?

—पर इसे रखना बेईमानी है।

—कैसी बेईमानी? तूने किसी की जेब से निकाला है, या चोरी की है ? अरे, जिन्हें अपने रुपये और बहुमूल्य वस्तुओं को सुरक्षित रखने की तमीज नहीं, उनके साथ ईमानदारी बरतना कोई बुद्धिमानी नहीं।

बातें करते हुए वे दोनों शायद कैंटीन की तरफ निकल गए। शांत झील में कोई पत्थर फेंक दे, तो उसके पानी में दायरे बनने लगते हैं। वैसी ही हलचल पंकज के मन में मच गई।

तीसरा पीरिएड खत्म होने की घंटी बजी। खेल के मैदान से बच्चे अपनी-अपनी कक्षाओं की ओर भागे। पंकज भी विचारमग्न-सा अपनी सीट पर आकर बैठ गया।

चौथा पीरिएड उनकी क्लास टीचर आभा मैडम का था। वह आईं। उन्होंने हाजिरी ली। पढ़ाने से पूर्व उन्होंने घोषणा की, "बच्चो ! तुम्हारे साथी सुहास की कीमती कलाई घड़ी गुम हो गई है। यह घड़ी उसके पापा उसके लिए सिंगापुर से लाए थे। जिस किसी को मिली हो, वह उसे सुहास को लौटा दे।"

पंकज का हाथ यंत्रवत उसकी पेंट की जेब में गया। तो यह घड़ी सुहास की है। वह खड़ा होकर कहना चाहता था कि मैडम वह घड़ी मुझे मिली है। पर उसके अंदर बिजली-सी चमकी—जो खोवत है, सो रोवत है। रोओ, सुहास। बड़ी तड़ी दिखाते हो अपने पैसे और विदेशी वस्तुओं की। इन्हें संभालकर रखने की तमीज नहीं, तो अब भुगतो इसका परिणाम।

बस, पंकज उठते-उठते रह गया।

मैडम ने पढ़ाना शुरू कर दिया। वह गणित पढ़ा रही थीं। पंकज को लग रहा था, जैसे उसकी जेब में कोई जलती हुई चीज रखी है। साथ ही उसे महसूस हो रहा था, जैसे किसी ने उसके मन पर मनों बोझ रख दिया है।

पंकज घर पहुंचा। उसने वह घड़ी मेज की दराज में छिपा दी। खाना खाकर वह आराम करने लगा। रोज वह आध-पौन घंटा सो लेता था। पर आज उसे नींद नहीं आ रही थी।

उसके मन में तो जैसे चोर और सिपाही बहस कर रहे थे। उसका एक मन कह रहा था...पंकज, यह तूने क्या किया ? यह तो सरासर बेईमानी है। जान-बूझकर किसी की कीमती चीज ऐसे रखना चोरी है।

उसके दूसरे मन ने कहा—मैंने कोई बेईमानी नहीं की। मुझे यह घड़ी मिली है। फिर यह मेरी हुई। जो पावत है, सो नाचत है।

पंकज उलझन में पड़ा रहा। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। शाम को चाय पीते हुए उसने बी० ए० में पढ़ने वाली अपनी दीदी से पूछा, "रश्मि दीदी, एक बात बताओ। अगर तुम्हें सड़क पर सौ रुपये का एक नोट पड़ा मिले, तो क्या तुम उसे उसके मालिक को लौटा दोगी या...।"

"अरे मूर्ख, कहीं अचानक यूं सड़क पर मिली वस्तु भी कभी कोई लौटाता है। मैं तो उस सौ के नोट को अपने पास रख लूंगी। उसे किताबें, चाकलेट और जीन खरीदने में खर्च कर दूंगी," उसकी दीदी ने कहा।

"पर दीदी, क्या यह बेईमानी नहीं ?" पंकज ने पूछा।

"तू तो सत्यवादी हरिश्चन्द्र जैसी बातें करने लगा है, रे।" दीदी ने उसे झिड़क दिया।

पंकज के मन का बोझ कुछ कम तो हुआ, पर वह पूरी तरह संतुष्ट नहीं हो पाया।

शाम को पापा आए, तो उनसे भी वही सवाल दोहराया, "पापा, मान लीजिए आप बस में सफर कर रहे हों, और आपको उसमें नोटों से भरा एक पर्स मिले, तो आप क्या करेंगे ?"

"यह तुम क्यों पूछ रहे हो ?" पापा ने मुस्कराकर कहा।

"यूं ही। इस विषय पर एक कहानी लिखने की सोच रहा था।" पंकज ने उत्तर दिया।

पापा ने गंभीर स्वर में कहा, "दूसरों की वस्तुओं को इस तरह अपने पास रख लेना सरासर बेईमानी है। मैं वह पर्स पुलिस कार्यालय में जमा करा दूंगा और उनसे अनुरोध करूंगा कि वे उसके मालिक को तलाश कर उसका धन उसे सौंप दें।"

पंकज बोला, "पर पापा, लोग तो कहते हैं—जो खोवत है, सो रोवत है। जो पावत है, सो नाचत है।"

"बेटे, बेईमानी को उचित ठहराने के लिए इंसान सौ बहाने तलाश कर लेता है। मैं इस कहावत से बिल्कुल सहमत नहीं हूं।" पापा ने निर्णायक स्वर में कहा।

पंकज उलझन में पड़ गया। जो कुछ दीदी ने कहा, पापा ने ठीक उसके विपरीत सलाह दी है। क्यों न मम्मी से और पूछ लिया जाए ?

रात को खाना खाते हुए पंकज ने मम्मी से कहा, "मम्मी, एक बात पूछूं ?"

"पूछो ?" मम्मी बोलीं।

"आप मंदिर जाती हैं। मान लीजिए, आपको वहां एक सोने की जंजीर पड़ी मिल जाए, तो आप क्या करेंगी ?" पंकज ने पूछा।

"बेटा, सोने का खोना या पाना, दोनों अशुभ होता है।" मम्मी ने उत्तर दिया।

"मम्मी, मैं शुभ-अशुभ नहीं, ईमानदारी-बेईमानी की बात कर रहा हूं।" पंकज बोला।

मम्मी ने तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया। अनायास खाना खाते-खाते वह रुक गईं। उनका बायां हाथ अपने गले तक गया और शीघ्र ही वह चिंतित स्वर में बोलीं, "अरे मेरी सोने की चेन !"

"तुमने सोने की चेन पहनी हुई थी ?" पापा ने पूछा।

"हां," मम्मी ने उत्तर दिया।

"तुमसे कितनी बार कहा है कि आजकल सोने के जेवर पहनना कोई बुद्धिमानी नहीं। आए दिन महिलाओं के गले से चेन खिंचने के समाचार आते रहते है।" पापा ने बिगड़कर कहा।

"पंद्रह दिन पहले शर्माजी की लड़की की शादी थी। उसमें पहनने के लिए निकाली थी।" मम्मी ने स्पष्टीकरण दिया।

"कहीं अलमारी में तो नहीं रख दी ?" पापा बोले ।

"मेरे ख्याल से तो मैं उसे पहने हुए थी।" मम्मी ने कहा।

"और उसे पहनकर मंदिर जाती रही थी ?" पापा ने पूछा।

—हां।

—फिर तो गई।

खाना खराब हो गया। अधखाई उठ गईं मम्मी। अलमारी का लाकर तलाशा। साड़ियों वाला खाना खोज डाला। सोने की चेन का कहीं पता नहीं था। घर में मातम-सा छा गया।

"करीब दो तोले की थी। हो गया कई हजार का नुकसान।" पापा बड़बड़ाए।

मम्मी रोने लगीं। घर में सबके चेहरे उतर गए। अपनी कोई अमूल्य वस्तु खो जाए, तो कितनी तकलीफ और दुख होता है, पंकज इसे देख रहा था। उस रात सब लोग ठीक से सो भी नहीं पाए।

अगले दिन सुबह उठकर पंकज ने देखा, मम्मी की आंखें लाल हो रही हैं और पापा का चेहरा उतरा हुआ है। अपना कुछ अमूल्य खोने की व्यथा का वह प्रत्यक्षदर्शी था।

मम्मी ने नाश्ता बनाया। बच्चों ने खाया। पर मम्मी-पापा ने उसे छुआ तक नहीं।

अचानक पापा के दिमाग में एक विचार आया। वह बोले, "सुशीला, तुमने कहीं वह सोने की जंजीर बैंक के लाकर में तो नहीं रख दी ?"

"मुझे तो कुछ याद नहीं आ रहा है।" मम्मी ने रुआंसे स्वर में कहा।

"फिर भी पता करने में क्या हर्ज है। बैंक-लाकर नौ बजे खुल जाएगा। चलकर देख आते हैं।" पापा ने सुझाव दिया।

नौ बजे मम्मी-पापा चले गए। पास ही दस कदम पर बैंक-लाकर था। पंकज की स्कूल बस साढ़े नौ बजे आती थी। वह मम्मी-पापा के लौटने की प्रतीक्षा करने लगा।

करीब बीस मिनट के बाद वे दोनों लौट आए। उनके चेहरे गुलाब के फूल की तरह खिले हुए थे। मम्मी के मुख पर तो दीवाली-सी जगरमगर हो रही थी।

"क्या सोने की जंजीर मिल गई, मम्मी ?" पंकज ने पूछा।

"हां, बेटे," पापा ने उत्तर दिया।

"कल रात से मेरी तो जान ही निकली पड़ी थी। अब मिल गई, तो जान में जान आई है।" मम्मी ने एक गहरी सांस छोड़कर कहा।

"तुम बड़ी भुलक्कड़ हो, पंकज की मां। चीजें रखकर भूल जाती हो। कितना तनाव पैदा हो जाता है इससे।" पापा ने मम्मी को उलाहना दिया।

पंकज के मन में होने वाला द्वन्द्व समाप्त हो चुका था। खोने की व्यथा और फिर से उसे पाने का सुख वह देख चुका था। उसकी समझ में आ चुका था—किसी की खोई वस्तु को अपने पास रख लेना बेईमानी है। इससे खोने वाले को कितना कष्ट हो सकता है, यह वह देख चुका था।

पंकज ने सुहास की घड़ी जेब में डाली और बस से स्कूल के लिए रवाना हो गया। बस स्कूल पहुंच गई।

जैसे ही वह बस से उतरा, उसने देखा कि एक लाल कार वहां आकर रुकी। सुहास उसमें से निकलकर बाहर आया। पंकज ने देखा—सुहास का चेहरा उतरा हुआ था। उस पर वही व्यथा थी, जो कल उसने अपने मम्मी-पापा के चेहरों पर देखी थी।



"हेलो, सुहास।" पंकज ने पहल की।

"हैलो, पंकज।" सुहास ने डूबे हुए स्वर में उत्तर दिया।

"घड़ी मिली, सुहास?" पंकज ने शरारत से मुस्कराते हुए पूछा।

"नहीं, यार।" सुहास ने बेहद उदास होकर कहा।

"मम्मी-पापा ने कुछ कहा?" पंकज ने पूछा।

"मम्मी ने वह धुनाई की कि बस तबियत साफ हो गई। पापा भी कल रात बहुत गरम हो रहे थे। पता नहीं किस चोर ने मेरी घड़ी मार दी।" सुहास बुरी तरह उखड़ा हुआ था।

"तुम्हारी घड़ी मिल गई है।" पंकज बोला।

"सच ?" विस्मय से सुहास की आंखें चौड़ी हो गईं।

"यह लो," कहकर पंकज ने जेब से घड़ी निकालकर सुहास को पकड़ा दी।

सुहास के चेहरे पर सुबह की धूप जैसी खुशी खिल गई। उसका मुख एकदम सुबह देखे मम्मी के चेहरे जैसा लग रहा था।

पंकज को लगा, वह चिड़िया के पंख-सा भारहीन हो गया है। बेईमानी की भावना के जिस बोझ ने कल से उसकी आत्मा को आक्रांत कर रखा था, वह आज एक झटके से हट गया था। उसे ईमानदारी का पुरस्कार मिला था। वह पुरस्कार था सुहास के चेहरे पर छाई हुई खुशी।

2. अंदर की आवाज

न जाने क्यों, पिछले कई दिनों से कलुआ को घर की याद आ रही थी। भीड़ भरी बसों में, गौरीशंकर मंदिर के बाहर सागर की भांति उफनते जनसमूह में ,उसकी उंगलियां अपना कौशल दिखातीं। किंतु उसका मन एकाकी पंछी जैसा उदास, अपने गांव की ओर उड़ जाने को करने लगता।

पिछले दिनों की यादें बार-बार लौटती थीं। अपने भरे-पूरे परिवार में वह पांचवां था। दो उससे छोटे थे। कभी उसने पेट-भर नहीं खाया। गांव में कभी सूखा या अकाल नहीं पड़ा। पर उसकी जिंदगी में तो जैसे शाश्वत अभाव, सूखा और अकाल की काल-छाया ने ग्रहण लगा दिया था।

वह जमकर काम करना चाहता था और पेट-भर रोटी खाना चाहता था। उसे दोनों ही चीजें नसीब नहीं हुईं। माई की चौबीस घंटे की चिल्लपों, बापू का अपनी एक टांग लेकर बैसाखियों पर अधमरे से झूलते रहना और खांसते रहना, बहन-भाइयों का कीड़े-मकोड़ों जैसा अस्तित्व। सब कुछ इतना लिजलिजा और घिनौना-सा था कि उस वातावरण में उसका दम घुटता था।

एक दिन वह बिना बताए घर से भाग खड़ा हुआ। उस दिन हुआ यह कि दिन-भर मटरगश्ती करने के बाद शाम को घर में घुसते ही बापू राशन-पानी लेकर उस पर चढ़ गया, "ससुरे, बराबर के हो गए हैं और दिन-भर आवारागर्दी करते-फिरते हैं। घर में क्या खत्ती गढ़ी है नाज की।" एक-एक शब्द तीर की तरह उसके मर्म को छेद रहा था। रात पड़ी। भूखे-प्यासे, तीन कोस की दौड़ लगाना बड़ा जीवट का काम था। मर्माहत हो, पलायन करने वाला शक्ति की सीमा पार कर ही जाता है।

आधी रात के बाद एक गाड़ी आई। लोग आलू के बोरों जैसे उसमें भरे थे। बड़ी मुश्किल से वह एक डिब्बे में घुस सका। लोगों ने उसे हांकना शुरू किया और वह बाथरूम तक पहुंच गया। पूरी रात उसे अपने छोटे भाई किशन की याद आती रही। पोलियो से उसकी दोनों टांगें खराब हो गई थीं। वही तो हर रोज किशन के पांवों में मालिश करता था। अब कौन उसकी देखभाल करेगा ?

अगले दिन-भर गाड़ी चलती रही। शाम के अंधेरे झूल आए, तब जाकर गाड़ी एक बहुत बड़े स्टेशन पर पहुंची। सब उतर गए। डिब्बे में एक भी यात्री नहीं बचा। वह समझ गया कि अब यह गाड़ी आगे नहीं जाने वाली है।

वह डिब्बे से बाहर आया। प्लेटफार्म पर भीड़ का आलम देखकर वह भौंचक्का रह गया। एक बार माई गंगा स्नान के मेले में ले गई थी। वहां ऐसी ही भीड़ थी। वह भीड़ के रेले

के साथ आगे बढ़ता चला गया। एक जगह बहुत बड़ा-सा बोर्ड लगा था—नई दिल्ली। तो वह दिल्ली पहुंच गया। अंदर-ही-अंदर उसे खुशी हुई कि किस्मत उसे सही जगह ले आई है। अब उसे भूखा मरने की नौबत नहीं आएगी। गांव का त्रिशेशर यहां दिल्ली में ही तो है। आइसक्रीम बेचता है। कितने ठाट से रहता है। इसके किस्से उसने गांव में सुने हैं।

भीड़ के रेले के साथ वह स्टेशन के बाहर आ गया। किसी ने उससे टिकट नहीं मांगा। टिकट बाबू के सामने से भीड़ के रेले-पे-रेले गुज़र रहे थे। जो टिकट दे वह भी बाहर, जो न दे वह भी बाहर। सामान से लदे-फदे एक कुली की छत्रछाया में वह शान से बाहर आ गया। अब वह कहां जाए, यह सोचकर उसका मन घबरा रहा था। उधर उसका पेट भी कुलबुला रहा था क्योंकि चौबीस घंटे से उसके मुंह में अन्न का एक दाना भी नहीं गया था। पेट में एक गड्ढा सा हो गया था, जिसमें पतझड़ के सूखे पत्ते से जल रहे थे। वह स्टेशन से बाहर आया। मुख्य सड़क पर इतनी सवारियां थीं कि वह चौंक गया। बसें, स्कूटर, कारें, रिक्शे, तांगे, क्या कुछ नहीं था। दुकाने नहीं थीं। सिर्फ तीन छोटी-छोटी झोंपड़ीनुमा दुकानें-सी थीं, जिनके बाहर कुली और कुछ गरीब से दिखते लोग बैठे रोटियां खा रहे थे।

कलुआ कोने वाली दुकान पर गया। एक काफी मोटी और गांव के रहमत पहलवान जैसी माई बोरी पर बैठी थी। उसके सामने कढ़ी, चावल, सब्जी, रोटी से भरे बड़े-बड़े बर्तन रखे थे। पीली कढ़ी और लाल मिर्च वाली घी तैरती सब्जी देख, उसके मुंह में पानी भर आया।

पेट की अग्नि और तीव्र रूप से प्रज्वलित हो गई।

"ओए की नदीदे की तरयों देखता पया है...छड़...लम्बा पड़।" वह मोटी औरत चीखी।

—माई, भूख लगी है।

—पैसे हैं ?

—नहीं।

—भाग छेती। भिखमंगा कहीं का।

—मैं भिखमंगा नहीं हूं, माई। मैं काम करूंगा। मैंने कल से कुछ नहीं खाया है।

मोटी महिला पिघल गई। उसने अपना आसन बदला। एक प्लेट उठाई और उसमें चार चपाती, चावल, कढ़ी और सब्जी डालकर उसे पकड़ा दी। वह खाने पर टूट पड़ा। भोजन का अमृत-स्वाद उसने जिंदगी में पहली बार जाना था। तृप्ति और सुरक्षा की भावना से ओतप्रोत; वह माई का दास हो गया।

काम और भोजन दोनों का प्रबंध हो गया। माई तीन बार खाना देती और सुबह पांच बजे से रात के दस बजे तक दबा के काम लेती। जूठे बर्तन मांजने से लेकर बाजार से सौदा-सुल्फ लाने तक का काम उसे करना पड़ता। यहां तक तो ठीक था। पर कुछ ही दिनों में उसे लगा, माई उससे चौबीस घंटे की चाकरी चाहती है। उसे यह अच्छा नहीं लगता था।

दिन में तीन-चार लड़के आते थे। उनसे आंखों-आंखों में बातें होतीं। हंसी का आदान-प्रदान होता। एक दिन उनमें से एक ने कलुआ की जेब में दस-दस के दो नोट डाले और कान में कुछ शब्द फुसफुसाए। जीवन में पहली बार उसकी जेब में इतने सारे रुपये थे। पूरे दिन वह काफी उत्तेजित रहा। स्वर्णिम भविष्य का आश्वासन। पैसों का अम्बार लग जाएगा। बस, उसी रात, माई के हाथ-पांव दबाने के बाद, वह झुग्गी के बाहर प्रतीक्षा करते साथियों के साथ हो लिया।

शीघ्र ही उसकी नई जिंदगी शुरू हो गई। उसे पुख्ता प्रशिक्षण दिया गया। उसे बताया गया कि अपने शिकार को पहचानने के लिए उसके मुंह और उसकी जेबों को गौर से देखना चाहिए। बस में किस तरह उससे सटकर खड़ा होना है। भीड़ में कैसे उसे धकियाना है। किस तरह अपने आसामी का ध्यान उसके माल से हटाना है। और किस तरह अपनी कलाकारी दिखाकर वहां से तुरंत रफूचक्कर होना है। कलुआ को उसके साथियों ने जेबों की इस कतरन-कला में पारंगत कर दिया।

पहले ही दिन उसने पांच सौ रुपये कमाए। उसे सिर्फ पचास ही मिले। पहला दिन बड़ी उपलब्धि का था। किंतु रात को आई० टी० ओ० के ओवर ब्रिज के नीचे एक कोने में सोते हुए उसने अपनी अंतरात्मा की चीत्कार को सुना। अंदर कोई रो रहा था।

सुबह उसने जसविंदर से कहा, "भाई, हम जो कर रहे हैं, क्या वह चोरी नहीं है ?"

"अबे ईमानदार की दुम, इस दुनिया में कौन साहूकार है ? सब चोर हैं। किसी-न-किसी तरह सब एक-दूसरे की जेबें काट रहे हैं।" उसका साथी बोला।

"पर यह गैर-कानूनी है। जुर्म है। किसी दिन पकड़े गए तो...।" कलुआ मिमिआया।

"तो ससुराल की सैर कर आना। आगे से नेताओं की तरह बातें की तो...तेरा जबड़ा तोड़कर रख दूंगा।" उसके दूसरे साथी ने कहा।

कलुआ ने अपनी रोती अंतरात्मा की आवाज को कठोरता से दबा दिया। कुछ ही दिनों में वह पक्का कलाकार बन गया। एक बार भी वह असफल नहीं हुआ। उसकी लम्बी, पतली, उंगलियां उसके पेशे में मदद करती थीं। अब साथियों ने उसे एक चाकू भी दे दिया था—खुद की सुरक्षा के लिए।

उसे चाकू के प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ी। वह खून-खराबे में विश्वास नहीं करता था। नई जिंदगी में पैसा था, मौजमस्ती थी। रात को वे लोग खूब बढ़िया खाना खाते और फिर किसी सिनेमा हाल में कोई फिल्म देखते। उसे मारपीट वाली फिल्में अच्छी लगती थीं। खासतौर से अमिताभ बच्चन की। वह स्वतंत्र था। कमाता था और खाता था। अब तो उसे पुलिस से भी डर नहीं लगता था, क्योंकि उसके साथियों ने उसे पुलिस वालों को पटाने का नुस्खा बता दिया था।

वह खुश था, सुखी था। पर वह अपने अंदर की आवाज को दबा नहीं सका। अब भी अंदर से कोई बोलता था, "कलुआ, तू नीच है, गिरा हुआ है। यह असामाजिक, गैर-कानूनी काम करते तुझे लज्जा नहीं आती ? क्या मेहनत-मजूरी करके तू अपना पेट नहीं भर सकता ?" इधर कुछ दिनों से उसका मन उदास रहने लगा था। उसे घर की याद आने लगी थी। इतने बरस हो गए, उसने मुड़कर कभी गांव की तरफ नहीं देखा।

...अपनी यादों में खोया कलुआ एक बस में चढ़ गया। कोई इतनी भीड़ नहीं थी बस में कि उसे इसमें चढ़ना चाहिए था। पर वह बेवकूफी कर गया। एक भी व्यक्ति खड़ा नहीं था। सब बैठे थे।

कंडक्टर से टिकट लेकर वह आगे बढ़ा। उसकी खोजी निगाहें अपने शिकार की तलाश करने लगीं। अगले दरवाजे के पास वाली सीट पर अधेड़ावस्था का एक व्यक्ति बैठा था। उसके बराबर की जगह खाली थी। वह वहीं जाकर बैठ गया। उसने कनखियों से देखा। वह व्यक्ति साधारण कपड़े पहने हुए था। उसकी जेबें काफी भरी हुई दिखाई पड़ रही थीं।

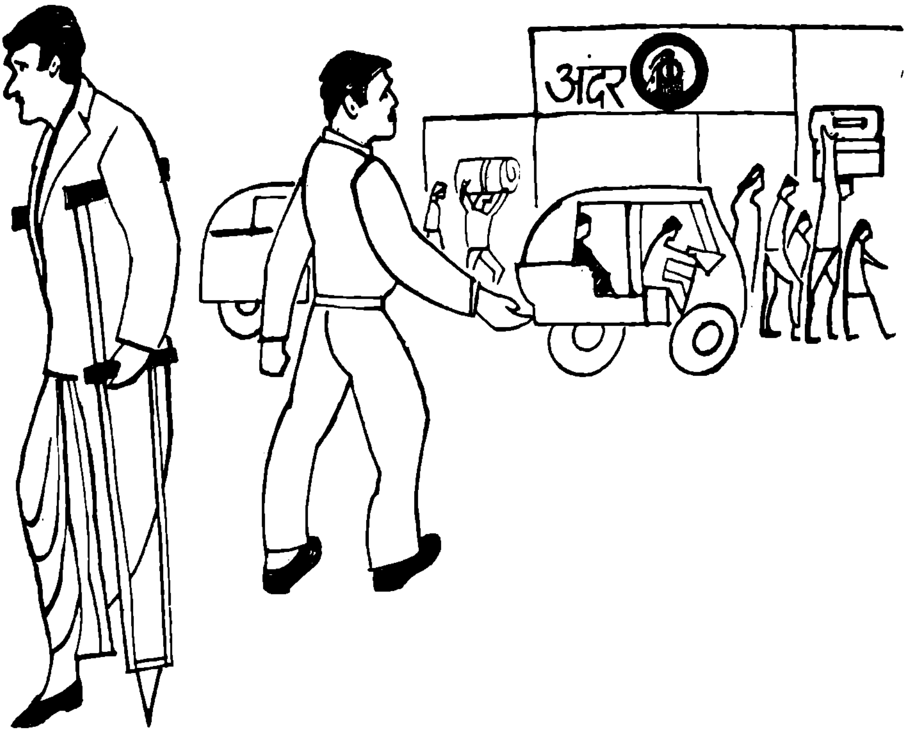
लाल किले से आगे उतार पर बस झटके से एक जगह ठहरी। पड़ोसी झटके के साथ आगे झुका। उसका सिर अगली सीट से टकराया। इस बीच पड़ौसी का बटुआ उसकी जेब में आ चुका था।

अगले पांच मिनट में बस रेलवे स्टेशन के स्टाप पर पहुंच गई। वह लपक कर नीचे आ गया। मूंगफली बेचने वाले की आड़ में खड़े होकर उसने पर्स खोला। दस-दस के पच्चीसों नोट उसमें थे। उसकी आंखों में चमक आ गई। आज तो एक ही आसामी ने वारे-न्यारे कर दिए।

वह पलटा। तभी उसकी निगाह बस पर पड़ी। शीघ्र ही उसकी आंखों की चमक बुझ गई। उसे लगा जैसे किसी ने उसके कलेजे पर सड़क कूटने वाला भारी इंजन चला दिया है। इस बोझ से आक्रांत, उसकी मृत अंतरात्मा की आवाज पुनर्जीवित हो गई।

बस से उतरने वाला अंतिम यात्री उसी का शिकार था। वह कंडक्टर का सहारा लेकर नीचे उतरा। उसकी सिर्फ एक टांग थी। वह बैसाखियों पर झुका हुआ आगे बढ़ रहा था—उदास, लुटा हुआ-सा।

कलुआ जड़वत वहीं खड़ा रह गया—निश्चेष्ट, निष्क्रिय, पाषाणमूर्ति बना। उसे अपने बापू की याद आ गई। अरे पातकी, तू तो अपने भाई-बाप की जेबें काटता रहा है। आज तो तूने अपने बापू को भी नहीं छोड़ा। अपंग, असहाय, निराश्रित बापू को तूने और ज्यादा बेबस बना दिया है।



पल भर में कलुआ ने फैसला कर लिया। उसके अंदर कोई जाग चुका था। वह तेज कदमों से आगे बढ़ा। बैसाखियों पर झूलते प्राणी को हल्का-सा धक्का दिया। उसी बीच उसने अपंग व्यक्ति का बटुआ उसकी जेब में डाल दिया और सीधा रेलवे स्टेशन की तरफ चल दिया। उसने पीछे मुड़कर भी नहीं देखा। उसने एक बार फिर गांव जाने का फैसला कर लिया। वह मुक्त और भारहीन-सा महसूस कर रहा था।

3. प्राण-रक्षा

जुलाई का महीना था। शाम से मूसलाधार वर्षा हो रही थी। सड़कों पर पानी भर गया था। वाहनों का आना-जाना लगभग बंद हो गया था।

रमुआ का काम ठप्प हो चुका था। उसने अपना सामान समेटकर लकड़ी के बक्से में बंद किया और वह सामने आम के पेड़ों वाली कोठी में घुस गया। वह एक घने पेड़ के नीचे, अपनी लकड़ी की पेटी पर बैठ गया। बारिश की बूंदे पत्तों से छन-छनकर आती हुई उसे भिगो रही थीं।

वह बड़ी दुविधा में पड़ गया। तेज वर्षा के कारण वह अपने घर नहीं जा सकता था। मालिक के डर के कारण वह कोठी के अंदर घुसने की हिम्मत भी नहीं जुटा पा रहा था।

एक बार उसका मन हुआ कि वह कोठी के अंदर चला जाए और वर्षा से बचने की जगह तलाश ले। पर कोठी के बूढ़े मालिक की लाल-पीली आंखें उसके मन को कंपा गई। उसे कुछ दिन पहले की एक घटना याद हो आई।

कोठी के मालिक का नौकर कालू उसके पास एक जोड़ा जूता लाया और बोला, "साहब ने कहा है कि इसमें एड़ी और सोल लगा दो।" "ठीक है," कहकर उसने बड़े मन से उन जूतों को बनाया।

शाम हो गई। कालू जूते लेने नहीं आया। उसके घर जाने का समय हो गया था। साहस जुटाकर वह खुद उन जूतों को लेकर अंदर कोठी में पहुंच गया।

बूढ़े मालिक बरामदे में पड़ी आरामकुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे थे। उसे देखते ही उन्होंने उखड़कर पूछा, "क्या है ?"

"जूते लाया हूं, मालिक।" रमुआ बोला।

"उधर रख दे।" बूढ़े ने बेरुखी से कहा।

रमुआ ने जूते सीढ़ियों पर रख दिए। फिर भी वह खड़ा रहा।

"अब क्या है ?" बूढ़े ने उखड़े स्वर में पूछा।

"मजूरी।" बड़ा साहस जुटाकर रमुआ बोला।

"कितना हुआ ?" मालिक ने पूछा।

"बारह रुपये।" रमुआ बुदबुदाया।

"बारह रुपये ? लूट मचा रखी है। शर्म भी नहीं आती पैसा बोलते हुए।" बूढ़ा ऐसे भड़क गया जैसे पेट्रोल पर जलती माचिस गिर जाती है।

"मालिक, बाहर एड़ी-सोल का रेट अठ्ठारह रुपये है। हम तो...।"

रमुआ की बात पूरी होने से पहले ही बूढ़ा चीखा, "गज भर की जबान हो गई है इस छोकरे की...।"

"मालिक, आजकल बड़ी मंहगाई है। बढ़िया जूता ढाई-तीन सौ का आता है। और गेहूं...।"

"बड़बड़ मत कर। बाहर जा। कल सुबह कालू तेरे पैसे दे आएगा। शर्म भी नहीं आती पैसे मांगने में। कोठी के बाहर बैठते हैं। दिन भर गंदगी मचाते हैं। हम कुछ नहीं कहते। तिस पर भी...।" बूढ़ा बड़बड़ाता रहा।

रमुआ निराश हो बाहर आ गया। अगले दिन सुबह क्या, आज तक कालू पैसे देने नहीं आया। पहले तो उसे बहुत बुरा लगा था। इतने बड़े आदमी होकर उस जैसे छोटे मजदूर का पैसा मार बैठे। शोभा देता है यह। बाद में उसने सब्र कर लिया।

बरसात चालू थी। रमुआ असहाय-सा अपने बक्से पर बैठा भीग रहा था। वह सोच रहा था—अगर बूढ़ा मालिक कोठी के पिछवाड़े नौकरों के क्वार्टर में उसे शरण दे देता, तो कितना अच्छा रहता। उसने कोशिश की थी, पर मालिक ने उसे दुत्कार दिया था।

पिछले कई वर्षों से वह आम के पेड़ों वाली इस कोठी के ठीक सामने फुटपाथ पर बैठकर मोची का काम करता है। पहले उसका बापू बैठता था। वह जहरीली शराब पीकर मर गया। उसके बाद से वह बैठने लगा।

यहां से उसका घर काफी दूर है। जमुना पार। करीब दस किलोमीटर दूर। सर्दी, गर्मी, लू, बरसात में इतनी दूर आना-जाना बड़े झंझट का काम है।

एक दिन मालिक मंदिर जा रहे थे। रमुआ से रहा नहीं गया। वह कोठी के मुख्य द्वार पर उनके सामने पड़ गया। उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, "मालिक अगर कोठी में पिछ-वाड़े रहने की इजाजत...।"

उसकी बात पूरी नहीं हुई। घबराकर पीछे हटते हुए बूढ़े मालिक ने उसे दो टूक जवाब दे दिया, "छि: छिः परे हट! सिर पर क्यों चढ़ा आ रहा है? तुझे और अपनी कोठी में! भाग यहां से।"

वह अपमानित-सा अपनी जगह आकर बैठ गया था। कई दिन बाद उसने कालू से पूछा था कि आखिर बूढ़े मालिक मुझसे इतनी घृणा क्यों करते हैं? कालू ने कोई उत्तर नहीं दिया था। सिर्फ मुस्कराकर रह गया था। उसे दुख हुआ था। साथ ही उसे एक बात का अफसोस भी था। इतनी बड़ी कोठी में मालिक अकेले थे। कालू ने उसे बताया था कि मालिक के दो बच्चे हैं, पर वे दोनों शादीशुदा हैं और विदेश में रहते हैं।

तभी जोर की बिजली कौंधी। बादल गरजे। मालिक को क्या इतनी बड़ी कोठी में अकेले रहने में डर नहीं लगता? रमुआ ने सोचा।

बिजली फिर चमकी। रमुआ ने उसके प्रकाश में देखा कि एक कार कोठी के बाहर आकर रुकी। उसमें से एक व्यक्ति उतरा। वह फाटक में घुसा और अंदर बरामदे की ओर चला गया। कार में कुछ और लोग भी थे, जो उसी में बैठे रहे।

वह अजनबी व्यक्ति बरामदे में पहुंचकर घंटी बजा रहा था। बिजली जैसी गति से रमुआ के मन में एक विचार कौंध गया। पिछले कई सालों से वह इस कोठी के बाहर बैठ रहा है। उसने इस आदमी को पहले कभी नहीं देखा।

कहीं यह कोई बदमाश या चोर तो नहीं? शक्ल से वह गुंडा लगता है। इधर कालू गांव गया है। घर में सिर्फ बूढ़े मालिक हैं और उनकी आया है, जो रात को इधर नहीं रहती।

रमुआ ने अपनी लकड़ी की पेटी से चमड़ा छीलने वाली पैनी धार की खुरपी निकाली और दबे पांव वह कोठी के बरामदे की ओर बढ़ गया।

उसका अनुमान एकदम सही निकला। चोर ने घंटी बजाई और कुछ ही क्षणों के बाद दरवाजा खुल गया। बूढ़े मालिक बाहर आए। चोर ने तत्काल ही अपने हाथ का छुरा मालिक के गले पर रख दिया और बोला, "चाबी निकाल, बूढ़े।"

रमुआ के मन में बिजली-सी कौंधी। उसे क्या लेना-देना इस कंजूस, बेईमान बूढ़े मालिक से। वह उसकी मजूरी मार चुके हैं। उसे कोठी के पास फुटपाथ से हटाकर सामने भेज चुके हैं। कोठी के पिछवाड़े भी रहने की इजाजत नहीं। अकेले हैं। भुगतें।

पर तभी रमुआ को अपनी मां की एक सीख याद आ गई—बेटा, बदी का बदला बदी नहीं, नेकी है। जो तुम्हारे साथ बुरा करे, तुम उसके साथ भी भला करो। जिसे तुम विष से नहीं मार सकते, वह गुड़ से जरूर मर जाएगा।

रमुआ का खन खौल गया। वह दबे पांव, बिल्ली की तरह बरामदे में पहुंच गया। पल-भर को वह ठिठका। अगर वह अंदर घुसा, तो कहीं मालिक नाराज न हो जाएं।

पर नहीं, इस समय मालिक की जान पर बनी है। अगर इस समय उसने साहस से काम नहीं लिया, तो वह अपनी जान और माल से हाथ धो बैठेंगे।

यही सोचकर रमुआ दृढ़ निश्चय के साथ चोर पर पीछे से झपटा। चोर की पीठ पर तेज खुरपी से भरपूर वार किया।

चोर पीठ पीछे से इस आकस्मिक हमले के लिए कतई तैयार नहीं था। हड़बड़ाहट में उसके हाथ से चाकू छूटकर दूर जा पड़ा। वह पलटा और दर्द से चीखता हुआ बाहर की तरफ भागा।

रमुआ उसके पीछे भागा। पर चोर ने बड़ी फुर्ती दिखाई। वह फाटक पार कर कार में घुस गया। कार स्टार्ट हुई और तेजी से चली गई।

रमुआ लौटकर अंदर आया। उसने देखा, बूढ़े मालिक का चेहरा पीला पड़ा हुआ था। वह भय से थरथर कांप रहे थे।

"इतनी रात गए आपको यूं दरवाजा नहीं खोलना चाहिए था, मालिक।" रमुआ ने साहस जुटाकर कहा।

कुछ क्षण की शांति के बाद मालिक सहज हुए। फिर वह बोले, "आज तो तूने मेरी जान बचा ली, मेरे बच्चे।"

"यह तो मेरा फर्ज था, मालिक।" रमुआ ने उत्तर दिया।

"पर इस समय तू यहां कैसे आ गया?" मालिक ने आश्चर्य से पूछा।



रमुआ सहम गया। वह घबराकर बोला, "मालिक, माफ कीजिए। मैं आपके घर में...।"

"मैं पूछता हूं, तू घर क्यों नहीं गया? यहां क्या कर कर रहा था?" मालिक ने प्यार भरे स्वर में पूछा।

"शाम से बरसात हो रही थी। मैंने गेट के पास आम के पेड़ के नीचे शरण ले रखी थी।" रमुआ ने डरते हुए कहा।

मालिक ने एक गहरी सांस ली और बोले, "रमुआ, आज तूने बहुत बड़ा काम किया है। तू बहुत बहादुर है।"

"यह तो मेरा फर्ज था, मालिक।" रमुआ ने हाथ जोड़कर कहा।

"आज तक मैं जिससे घृणा करता था, उसी ने आज मेरी प्राण-रक्षा की है। आज से तू इसी कोठी में रहेगा। मेरी देखभाल करेगा। बोल, करेगा न ?" मालिक ने पूछा।

रमुआ विस्मित-सा खड़ा रह गया। उसकी आंखों में खुशी के आंसू थे। मां ने क्या झूठ कहा था ?

4. चुनाव

वीरभद्र एक न्यायप्रिय और प्रजापालक राजा थे । उनके राज्य में शांति थी और प्रजा सुखी ।

कई बार बाहर के राज्यों से आने वाले अतिथि वीरभद्र से इसका रहस्य पूछते, "महाराज, आपके राज्य में प्रजा इतनी सुखी और संतुष्ट कैसे है ?"

वीरभद्र उत्तर देते, "देखिए मैं अपने कर्मचारियों के माध्यम से राज्य पर शासन करता हूं । अपनी प्रजा की सेवा के लिए हमने ईमानदार और मेहनती लोगों को नियुक्त किया है । यदि जनसेवक जनता की सेवा करने के बजाय उसका शोषण करना शुरू कर दें, तो आप उसके परिणाम की कल्पना कर सकते हैं ।"

वास्तव में वीरभद्र का दावा सही था । उनके दरबार तथा अन्य विभागों में एक से बढ़कर एक ईमानदार तथा मेहनती कर्मचारी नियुक्त थे ।

ऐसे कर्मचारियों का चयन करना सरल काम नहीं था । इसके लिए उन्होंने बुद्धिमान विचित्रसेन को नियुक्त किया हुआ था ।

विचित्रसेन का विश्वास था कि जनता की सेवा के लिए कर्मचारियों का ईमानदार होना बहुत जरूरी होता है, इसलिए विचित्रसेन जनसेवकों की नियुक्ति तथा चयन के लिए विचित्र, किंतु मनोरंजक तरकीबें लड़ाते थे ।

एक दिन एक बूढ़ा व्यक्ति उनके पास आया । उसके साथ एक नवयुवक भी था । बूढ़े ने हाथ जोड़कर विचित्रसेन से विनती की, "मुझपर कृपा करें । मैं बूढ़ा हूं । मेरा यह इकलौता बेटा शिक्षा प्राप्त करने के बावजूद भी बेकार घूम रहा है । यदि आप इसे राजकीय सेवा में किसी पद पर नियुक्त कर सकें, तो मैं जीवन-भर आपका आभारी रहूंगा ।"

"ठीक है, आप जाइए । मैं इससे बात कर लेता हूं ।" विचित्रसेन ने गंभीर स्वर में कहा ।

"आप इसे नौकरी दे देंगे न ?" बूढ़े ने पूछा ।

"मैं इसे क्या नौकरी दूंगा ? नौकरी तो इसे इसके गुण दिलवाएंगे ।" विचित्रसेन ने कहा ।

विचित्रसेन की यह बात बूढ़े की समझ में तो आ गई, पर वह नवयुवक मन-ही-मन बड़बड़ाया, "राजा ने इनको कर्मचारियों के चुनाव की जिम्मेदारी क्या सौंप दी है, इनका तो दिमाग ही सातवें आसमान पर पहुंच गया है ।"

बूढ़े के बाहर जाते ही विचित्रसेन ने उस नवयुवक से पूछा, "तुम्हारा क्या नाम है ?"

"विरल ।"

"नाम रोचक है। शिक्षा ?"

"शास्त्री हूं।"

"फिर यहां क्यों आए ? अध्यापन का कार्य भी तो कर सकते हो।"

"उसमें भविष्य नहीं है।"

"राजकीय सेवा में ही क्यों आना चाहते हो ?"

"इसमें धन है, पद है, सम्मान और प्रतिष्ठा है।"

"ठीक है। मंगलवार को सुबह ठीक दस बजे आ जाना। मैं महाराज वीरभद्र के नाम एक पत्र दे दूंगा। तुम्हारी नियुक्ति हो जाएगी।"

"धन्यवाद," कहकर विरल वहां से चल दिया।

बुधवार को सुबह ग्यारह बजे वह विचित्रसेन के पास पहुंचा और उनके बिना पूछे ही एक दिन देर से आने की सफाई देने लगा, "कल पिताजी कुछ अस्वस्थ हो गए थे। उनके इलाज में काफी व्यस्त हो गया था।"

"कोई बात नहीं। ये दो पत्र हैं। एक महाराज वीरभद्र के नाम है। यह उन्हें दे देना। दूसरा तुम्हारे नाम है। जब नौकरी मिल जाए, तब इसे खोलकर पढ़ना।" विचित्रसेन ने विरल को दोनों पत्र पकड़ा दिए।

"धन्यवाद," कहकर विरल चलने को हुआ, तो विचित्रसेन बोले, "तुम्हें एक कष्ट देना चाहता हूं। क्या तुम एक हजार स्वर्ण मुद्राओं का यह बक्सा राजमहल ले जा सकोगे ?"

"एक हजार स्वर्ण मुद्राएं," विरल के मुख से अनायास निकल गया।

"हां, पर निश्चित रहो। इस बक्से में ताला लगा है। हमने इसे सीलबंद भी कर दिया है।" विचित्रसेन ने बताया।

"ठीक है। मैं इसे ले जाऊंगा," विरल ने उत्तर दिया और बक्सा उठाकर अपने सिर पर रख लिया। फिर वह बोला, "यह तो बहुत भारी है।"

"हां राजकीय सेवा में कर्तव्यपालन और उत्तरदायित्व का भार कुछ ज्यादा ही होता है।" विचित्रसेन ने उत्तर में कहा।

विरल ने इस बात की गहराई पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह बक्सा सिर पर उठाए राजमहल की ओर चल दिया। आधे रास्ते तक पहुंचते-पहुंचते वह बेहद थक गया। धूप बहुत तेज थी। अभी उसे चलना भी बाकी था। इसलिए उसने थोड़ी देर कहीं बैठकर आराम करने का फैसला किया।

एक घने वृक्ष के नीचे वह सुस्ताने के लिए बैठा, तो उसके मन में एक विचार आया। इस सरकारी नौकरी में मुझे क्या मिलेगा ? जितना जिंदगी-भर में मैं नहीं कमा सकता; उतना अभी मेरे पास है। ये पूरी की पूरी स्वर्ण मुद्राएं मेरी हो जाएं, तो क्या ऐश रहेगी। विचित्रसेन भी कितने मूर्ख हैं। इतना सारा धन मुझे यों ही थमा दिया। प्रमाण के लिए

कहीं कोई हस्ताक्षर भी नहीं लिए। अगर मैं इन स्वर्ण मुद्राओं को पचा जाऊं, तो कानूनी रूप से वह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

बस यह सोचकर विरल ने बक्से का ताला तोड़ डाला। पर जैसे ही उसने बक्सा खोला उसके होश उड़ गए। उसमें स्वर्ण मुद्राएं नहीं, बड़े-बड़े पत्थर रखे थे।



अब विरल ने महाराज वीरभद्र के नाम विचित्रसेन का लिखा पत्र खोला। उसमें लिखा था—महाराज, मैं विरल नाम के इस नवयुवक को आपके पास एक हजार स्वर्ण मुद्राओं के

साथ भेज रहा हूं। यदि स्वर्ण मुद्राओं से भरा, सीलबंद बक्सा आपके पास सकुशल पहुंच जाए तो विरल को नियुक्ति पत्र दे दें।

आपका,
विचित्रसेन

पत्र पढ़कर विरल ने अपना माथा पीट लिया। फिर उसने अपने नाम वाला पत्र खोला। उसमें लिखा था—विरल, मुझे संदेह ही नहीं, बल्कि विश्वास है कि तुम महाराज वीरभद्र तक नहीं पहुंच पाओगे। तुममें जनसेवक बनने का एक भी गुण नहीं है। तुम पद की शक्ति और प्रतिष्ठा से प्रेरित होकर जनसेवक बनने चले थे। इस भावना की सहचरी है—स्वार्थ भावना। वही तुम से वह कार्य करवाएगी, जो एक जनसेवक को नहीं करना चाहिए। और हां, तुम्हें समय की पाबंदी भी सीखनी होगी। यह भी जनसेवक के लिए एक आवश्यक गुण है।

तुम्हारा शुभचिंतक,
विचित्रसेन

विरल को लगा जैसे विचित्रसेन ने उसके गालों को तमाचे मार-मारकर लाल कर दिया है। उसे अपने आप से घृणा होने लगी, अपने किए पर पछतावा होने लगा।

उसने फैसला कर लिया कि वह अध्यापन कार्य शुरू कर देगा और स्वार्थ, लोभ तथा पद-लोलुपता की भावनाओं को सदा के लिए अपने जीवन से निकाल देगा।

5. विपत्ति में

ललित सातवीं कक्षा में पढ़ता था। उसकी वार्षिक परीक्षाएं चल रही थीं, इसलिए वह खूब जमकर मेहनत कर रहा था।

उस दिन ग्यारह बजे ललित का गणित का परचा था। वह सवा दस बजे निकला। दस बजकर बीस मिनट पर उसके स्कूल की बस आती थी। बस स्टाप की तरफ जाते हुए ललित को पिछली रात की घटना याद आ गई, जब मां ने पिताजी से पूरा किस्सा सुना था, तो वह एकदम घबरा गईं और बोली थीं, "आप कल से कालिज मत जाइएगा। इन बदमाशों से लड़ाई करने से कोई फायदा नहीं।"

"तो तुम चाहती हो कि मेरी आंखों के सामने, मेरी नाक के नीचे, वे बदमाश वार्षिक परीक्षा में खुलकर नकल करें और मैं हाथ पर हाथ धरे बैठा रहूं। नहीं, मुझसे यह न होगा।" पिताजी ने दृढ़तापूर्वक कहा था।

"पर जिस लड़के को आपने नकल नहीं करने दी, वह आपको धमकी भी तो दे गया है। आजकल के विद्यार्थी सिरफिरे होते हैं, कहीं...।" मां ने घबराते हुए कहा। वह बेहद डरी हुई थीं। उनका स्वर भर्रा रहा था।

"मैं इन गीदड़ भभकियों से नहीं डरता। मैं अपने कर्तव्य का पालन करूंगा, चाहे इसके लिए मुझे अपनी जान...।" पिताजी अपनी बात पूरी नहीं कर पाए थे कि मां ने उनके मुंह पर अपना हाथ रख दिया था।

ललित को पिताजी के इस साहस और कर्तव्यनिष्ठा से बड़ी प्रेरणा मिली थी। वह पिताजी की बात सुनकर बहुत प्रभावित हुआ था। वह उनसे सहमत था कि विद्यार्थियों को परीक्षा में नकल नहीं करनी चाहिए। वह मन-ही-मन उनके जैसा बनने का फैसला करता रहा था।

यही सब सोचता हुआ ललित बस स्टाप पर पहुंचा, तो वहां उसके साथ बस से जाने वाले मुरली, दीपा व सुहास में से कोई भी नजर नहीं आ रहा था। इसका मतलब था कि उसकी बस निकल चुकी थी।

अब क्या किया जाए ? अगर उसे यह पता होता कि उसकी बस चली गई, तो वह पिताजी से कहता कि वह उसे स्कूल छोड़ते हुए अपने कालिज चले जाएं। अभी पन्द्रह-बीस मिनट पहले ही वह स्कूटर से कालिज गए थे। कोई बात नहीं। वह किसी सार्वजनिक बस से चला जाएगा।

यह सोचकर ललित बस स्टैंड की तरफ चल पड़ा। अभी वह कोई दो सौ मीटर ही गया होगा कि एक लाल रंग की मोटर ठीक उसकी बगल में आकर रुकी। उसमें तीन व्यक्ति बैठे थे।

उनमें से एक ने कार से गर्दन बाहर निकालकर कहा, "तुम ललित हो न ? प्रोफेसर रमेश के पुत्र ?"

"जी हां," ललित ने कहा।

"जल्दी से हमारे साथ चलो। तुम्हारे पिताजी का स्कूटर एक बस से टकरा गया है। बड़ी जबरदस्त दुर्घटना हुई है। तुम्हारे पिताजी के सिर में काफी चोट आई है। हम उन्हें अभी-अभी अस्पताल में भर्ती कराकर आ रहे हैं।" मोटर में बैठा वह नवयुवक उसकी बांह पकड़कर बोला।



पिताजी की दुर्घटना का समाचार सुनकर ललित एकदम घबरा गया। वह नवयुवक के साथ मोटर में बैठने को हुआ ही था कि तभी उसके पांव ठिठक गए।

इस तरह अपरिचित व्यक्तियों के साथ मोटर में जाना उसे खतरे से खाली नहीं लगा। उसे अपने पिताजी की एक सीख याद आ गई—विपत्ति में भी मनुष्य को अपनी बुद्धि और विवेक नहीं खोना चाहिए।

"आपने पिताजी को किस अस्पताल में भर्ती कराया है ?" ललित ने पूछा।

"मिशन अस्पताल में," अंदर बैठे व्यक्ति ने कहा। ललित ने देखा कि वह नवयुवक उसके प्रश्न को सुनकर चकरा गया था।

मिशन अस्पताल का नाम सुनकर ललित ने बिजली-सी गति से सोचा—मिशन अस्पताल यहां से दस किलोमीटर दूर है। वहां आने-जाने में कम-से-कम पौन घंटा लगता है। पिताजी तो अभी बीस मिनट पहले ही गए हैं। इतनी जल्दी ये लोग उन्हें इतनी दूर के अस्पताल में भर्ती कराकर कैसे लौट सकते हैं? उसका संदेह पक्का हो गया। "पिताजी का स्कूटर कहां है?" ललित ने पूछा।

उस नवयुवक ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर से उसकी बांह पकड़कर बोला, "जल्दी करो। तुम्हारे पिताजी की दशा गंभीर है।"

ललित ने अपनी बांह छुड़ा ली और पूछा, "पिताजी का स्कूटर कौन-सा था?"

"वेस्पा था। वह पुलिस के कब्ज़े में है," अंदर बैठा व्यक्ति बोला।

ललित की समझ में अब पूरी तरह आ गया कि ये लोग वही बदमाश हैं, जिन्होंने पिताजी को धमकाया था और वे उसका अपहरण करना चाहते हैं। दरअसल, उसके पिताजी का स्कूटर वेस्पा नहीं था।

ललित को अपनी चाल में न फंसता देख नवयुवक ने उसे घसीटकर मोटर के अंदर करना चाहा, तो उसने चीखना शुरू कर दिया, "बचाओ...बचाओ।"

भीड़ इकट्ठी हो गई। तीनों बदमाश घबराकर भाग गए। पर ललित ने उस कार का नंबर एक कागज पर लिख लिया।

इस घटना के बाद भी ललित ने हिम्मत नहीं हारी। वह तिपहिया स्कूटर से स्कूल गया और उसने इम्तिहान दिया। उसका वह पर्चा बहुत अच्छा हुआ था।

वह घर लौटा, तो दोपहर बाद पिताजी के कालिज से लौटने पर उसने उन्हें पूरा किस्सा सुना दिया।

पिताजी ने ललित की पीठ ठोंकी और बोले, "संकट और विपत्ति में अगर इसी तरह विवेक और साहस से काम लिया जाए, तो अधिकांश विपत्तियां टल सकती हैं।"

शाम को पिताजी ने पुलिस में रिपोर्ट लिखा दी और मोटर के नंबर की सहायता से पुलिस ने उन बदमाशों को पकड़ लिया। वे वही बदमाश लड़के थे, जिन्हें ललित के पिताजी ने इम्तिहान में नकल करने से रोका था।

6. पारस स्पर्श

पंद्रह वर्षीय दुबला-पतला, किन्तु गजब का फुर्तीला, घसीटा बांस में बंधी लम्बी झाड़ू लिए अमरूद वाली कोठी में दाखिल हुआ, तो एकबारगी उसका दिल धड़क उठा। कल की झाड़ मन में ताजा हो आई—"अरे कमबख्त, तूने यह नल काहे छू दिया ? अब इसे आग से तपाना पड़ेगा।" बरामदे में लकड़ी की लम्बी आराम कुर्सी पर अधलेटी बूढ़ी मालकिन ने सुमरनी के दानों को जल्दी-जल्दी फेरते हुए चीखकर कहा था।

उसने कोई जवाब नहीं दिया था। उसका काम था मुहल्ले में सफाई करना। तीन साल पहले उसकी मां एक ट्रक की चपेट में आकर चल बसी थी। बाप तो पहले से ही नहीं था। तब से वह यहां इसी मुहल्ले में सफाई करने आ रहा है। वह चुपचाप अपना काम करता रहता। झाड़ पड़ती, तो भी अपना मुंह नहीं खोलता।

हां, उसे अमरूद वाली कोठी की इस बूढ़ी पर बड़ी दया आती है। कितनी अकेली है बेचारी! पांच कमरों की इतनी बड़ी कोठी। अमरूद के एक दर्जन पेड़ हैं, पर अमरूद खाने वाला कोई नहीं। मालकिन के अलावा जनेऊधारी, तिलक लगाने वाला, घुटनों तक धोती तथा खादी की बंडी पहनने वाला उसकी उम्र का छोकरा रामू। बस। आजकल तो वह छोकरा भी नहीं है। परसों गांव चला गया। पता नहीं इस बुढ़ापे में मालकिन का काम कैसे चलता होगा ? कैसे खाना पकाती होंगी ?

घसीटा का मन करता है कि वह अपनी मां-सरीखी इस मालकिन की सेवा करे, खाना पकाकर खिलाए, उनके घर की सफाई कर दे, यानि कि मालकिन को कोई तकलीफ न होने दे। पर न बाबा, यह सब कैसे हो सकता है।

मालकिन खूब पूजा-पाठ, धर्म-कर्म करती हैं। वह तो उसकी छाया तक से बचती रहती हैं। अगर वह गलती से टॉयलेट का नल छू ले, तो अखबार जलाकर उसे तपाती हैं। लॉन में सूखते कपड़ों से अगर वह छू जाए, तो उन्हें दुबारा धुलवाया जाता है। एक बार वह गलती से बरामदे में घुस गया था। रामू ने सारा बरामदा साफ पानी से धोया था।

इस सबके बावजूद उसे बूढ़ी मालकिन पर तरस आता है। कितनी अकेली और असहाय हो गई हैं साहब के मर जाने के बाद। पिछले साल अचानक उनकी मृत्यु हो गई थी। सुबह भले-चंगे थे। पिछवाड़े का पूरा सहन पानी डालकर धुलवाया था। उसके करीब एक घण्टे बाद अचानक वह बेहोश हो गए। जब तक डाक्टर आया, वह चल बसे थे।

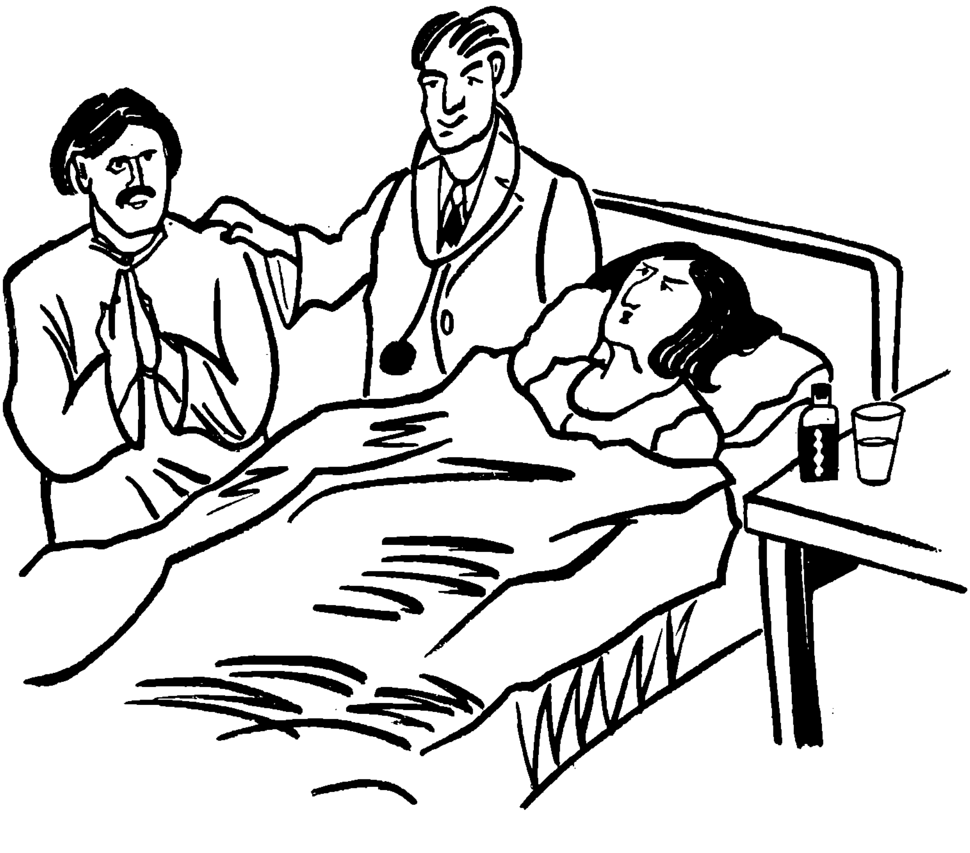
उसे रामू ने बताया था कि साहब के दिमाग की कोई नस फट गई थी। कैसा मेला-सा जुटा था इस अमरूद वाली कोठी में। तब उसे पता चला कि साहब के दो बेटे और एक बेटी हैं। सब शादीशुदा हैं और अलग-अलग शहरों में रहते हैं।

आखिर बूढ़ी मालकिन इतनी बड़ी कोठी में अकेली क्यों रहती हैं ? अपने किसी बेटे या बेटी के पास क्यों नहीं चली जातीं ? उसके दिमाग में हमेशा यही सवाल कुलबुलाता रहता था, पर उसे इसका उत्तर नहीं मिलता था।

गर्दन झुकाए लॉन की सफाई करते-करते, अपनी बूढ़ी मालकिन के बारे में सोचता हुआ वह जैसे ही बरामदे के समीप पहुंचा, उसका कलेजा धक्क से रह गया। बूढ़ी मालकिन अपनी अराम कुर्सी पर बैठी-बैठी एक ओर लुढ़क गई थीं। शायद वह बेहोश हो गई थीं। वह आगे बढ़ा। उसने सोचा, उन्हें उठाकर ठीक से पलंग पर लिटा दिया जाए। पर तभी बिजली-सी गति से उसके मन में विचार आया—वह अछूत है। मालकिन को छुएगा तो...।

वह पलटा। तेजी से दौड़कर डाक्टर सहाय को बुला लाया। डाक्टर ने बूढ़ी मालकिन की शारीरिक परीक्षा की। उन्हें एक इंजेक्शन दिया। फिर वह बोले, "घसीटा, दौड़कर एक टैक्सी तो ले आ। श्रीमती मेहरा को दिल का दौरा पड़ा है। अगर इन्हें तुरंत अस्पताल में भर्ती न कराया तो...।"

घसीटा दौड़ता हुआ गया और टैक्सी ले आया। वे दोनों श्रीमती मेहरा को लेकर अस्पताल पहुंचे और उन्हें वहां भर्ती करा दिया।



करीब दो सप्ताह बाद स्वास्थ्य लाभ करके श्रीमती मेहरा घर लौटीं, तो उनके साथ सिर्फ डा० सहाय और घसीटा थे। उनके किसी भी बच्चे को उनकी बीमारी की सूचना नहीं दी गई थी। देता भी कौन ?

दिसम्बर की कुनकुनी धूप में लॉन में पड़ी चारपाई पर लेटी बूढ़ी मालकिन एकटक स्नेहभरी दृष्टि से घसीटा को देखे जा रही थीं। वह उनकी चारपाई से काफी दूरी पर खड़ा था।

"मिसेज मेहरा, अगर उस दिन घसीटा आपके लिए तुरंत चिकित्सा सुविधाएं न जुटाता, तो कुछ भी हो सकता था।" डाक्टर सहाय ने उठकर चलते हुए कहा।

"मांजी, हमें माफ कर दीजिए। हमने आपको छूकर...।"

"तूने तो छूकर मुझे नई जिंदगी दी है रे।" घसीटा की बात पूरी होने से पहले ही मालकिन बोल पड़ीं।

"मांजी। नई जिंदगी तो भगवान ने दी है। हमने तो...।" घसीटा का स्वर भर्रा गया।

"घसीटा, मेरी प्राण-रक्षा करके तूने मेरी आंखें खोल दी हैं। मेरी समझ में अब आ गया है कि जिसे हम अछूत मानकर तिरस्कृत करते रहे, वह तो हमारे सगों से भी ज्यादा सगा निकला। आज से तू मेरे साथ इसी कोठी में रहकर मेरी देखभाल करेगा। बोल करेगा न !" मालकिन ने करुणा भरे स्वर में पूछा। कृतज्ञता-भाव से उनकी आंखें भीग रही थीं।

घसीटा स्तब्ध और विस्मृत-सा खड़ा रह गया। उसकी आंखों में भी खुशी के आंसू थे।

7. मूर्ति का रहस्य

पूरे गांव में उत्तेजना और सनसनी फैली हुई थी। इतवार की सुबह वह चमत्कार होने वाला था, जिसकी घोषणा एक सप्ताह पूर्व संतजी ने की थी।

नदी के किनारे करीब दो सौ गज क्षेत्र को घेरकर बाड़ लगा दी गई थी। बीच में एक छोटी-सी फूस की कुटिया बनाकर नए संतजी उसमें रहने लगे थे। करीब एक महीने पहले पूर्णमासी के दिन उन्होंने गांव में प्रवेश किया था।

घुटने तक गेरुआ वस्त्र, लंबे बाल और घनी दाढ़ी। एक पोटली लेकर वह गांव में पधारे। भिक्षा मांगी और फिर नदी के पास वाली इस उपजाऊ भूमि पर कब्जा करके बैठ गए।

यह सार्वजनिक भूमि थी। इस पर पंचायत का अधिकार था। सरपंचजी ने उस भूमि पर बनी कुटिया की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सरपंच का एक बेटा था—सुखदेव। पन्द्रह वर्ष की उम्र में ही बहुत चतुर और बुद्धिमान हो गया था। उसने शाम को नदी के किनारे दोस्तों के साथ खेलते हुए देखा कि पंचायत की भूमि पर एक साधू से लगते आदमी ने कुटिया बना ली है और वहां गांव की कई महिलाएं बैठी हैं।

उसने रात को आकर सरपंच से कहा, "बापू, नदी के पास वाली उपजाऊ जमीन को किसी साधू ने घेर लिया है।

"कोई बात नहीं बेटा, दस-पांच दिन ठहरकर चला जाएगा। ये लोग रमता जोगी होते हैं। आज यहां, कल वहां।" सरपंच ने बेटे की बात को गंभीरता से नहीं लिया।

"बापू, अच्छे-सच्चे साधू-संत कहां मिलते हैं। आजकल तो ठगों ने इसे अपना धंधा बना लिया है।" सुखदेव बोला।

"यह तू क्या कह रहा है रे।" सरपंच ने चौंककर कहा।

"बापू, मैं ठीक कह रहा हूं। मुझे तो यह साधू कोई ढोंगी लगता है। आज उसने सार्वजनिक भूमि पर एक कुटिया डाली है। कल वह वहां मंदिर बना लेगा। फिर आप उसे कभी वहां से बेदखल नहीं कर सकेंगे।" सुखदेव ने कहा।

सरपंच को सुखदेव की बातों में कोई खास दम नजर नहीं आया। उसने बेटे को टालने की खातिर कहा, "ठीक है, देखूंगा।"

सुखदेव स्कूल जाता। शाम को दोस्तों के साथ खेलता। पर उसका दिमाग गांव में आए इस नए साधू पर अटका हुआ था। उसने किताबों में ऐसी कथाएं पढ़ी हैं, और गांव के टेलीविजन पर भी ऐसे कार्यक्रम देखें हैं, जिनमें ढोंगी साधुओं को धर्म भीरू, अंधविश्वासी, सीधे-साधे

लोगों को ठगते हुए दिखाया गया है। सुखदेव नए साधू की गतिविधियों पर नजर रखे हुए था। कई दिन तक वह उसकी कुटिया के बाहर जाकर बैठता रहा। उसे यह देखकर घोर आश्चर्य हुआ कि गांव की औरतें वहां आतीं और बाबा महाराज से अपने कष्ट निवारण के लिए प्रार्थना करतीं।

"बाबा महाराज, मेरी सास मुझे बहुत परेशान करती है। कोई ऐसा गंडा-तावीज दो, जिससे वह मेरे बस में हो जाए।"

"भगतजी, मेरी बहू के ब्याह को पांच साल हो गए। पर उसकी गोद अभी तक सूनी है। कोई मंत्र-जाप बताओ। बच्चा हो गया, तो मैं आपको मालामाल कर दूंगी।"

"महंतजी, मेरे बेटे को तीन दिन से बुखार आ रहा है, कोई उपचार करो।"

साधू के पास इन महिलाओं के हर कष्ट और परेशानी का एक ही उपाय था। वह उनको एक चुटकी-भर भभूत देता और कहता, "देवी मां सब ठीक करेंगी।"

सुखदेव की समझ में आ गया कि यह साधू पक्का ढोंगी है। साथ ही उसे एक विचित्र अनुभव-सा हुआ। उसे लगता, यह शक्ल काफी जानी-पहचानी है—वही आंखे, वही माथा, वही चेहरे की बनावट। बस, बढ़े बालों और दाढ़ी ने इसकी असलियत छिपा ली है।

कहीं यह गांव का वह पटवारी तो नहीं, जिसे रिश्वत लेने के जुर्म में नौकरी से निकाल दिया गया था। बाद में उसने नदी के किनारे अकेले में नहाती सुरजन मेहतो की पत्नी के गले से सोने की जंजीर खींची और फरार हो गया।

सुखदेव के संदेह की पुष्टि तो तभी होती, जब साधू की दाढ़ी-मूंछ काटी जाती। पर यह संभव नहीं था। वह इस साधू पर कड़ी नजर रखे हुए था। जब दो महीने बीत गए और रमता जोगी ने वहां से खिसकने का नाम नहीं लिया, तो उसने फिर बापू को कुरेदा।

सरपंच ने पंचायत बुलाकर साधू को सार्वजनिक भूमि से हटाने का फैसला कर लिया। पर तभी एक विचित्र घटना घटी। इतवार को साधू अपने दो चेलों को लेकर गांव में आया। उसने घोषणा की—"भाइयो, कल रात को मेरे सपने में देवी आई थीं। वह कह रही थीं कि इस गांव पर महान् विपत्ति आने वाली है। पर जब मैंने देवी मां से आप लोगों की रक्षा करने की प्रार्थना की, तो वह मान गईं। उन्होंने कहा कि वह अगले रविवार को प्रातः प्रकट होंगी।"

"सच!" ग्रामवासी उत्तेजित हो गए।

"हां, एकदम सच। रविवार को देवी मां मेरी कुटिया के पास भूमि से साक्षात प्रकट होंगी। पर देवी मां ने सपने में बताया था कि ग्रामवासियों से कह देना कि मेरे उद्गम स्थान पर वे एक मंदिर बनाएं। अगर उन्होंने ऐसा नहीं किया, तो वह अंतर्ध्यान हो जाएंगी, और गांव पर ऐसी विपत्ति आएगी कि बस...। तुम सब नष्ट हो जाओगे।" साधू ने कहा।

"नहीं, महाराज। हम मंदिर बनवाने के लिए तन-मन-धन से आपकी सेवा करेंगे।" भीड़ ने एक स्वर में कहा।

सुखदेव भी भीड़ में था। उसने सोचा, तो साधू महाराज का ठगी का नाटक शुरू हो गया है।

यह समाचार पूरे गांव में बाढ़ के पानी-सा फैल गया। गांव के प्रमुख लोग चौपाल की पक्की इमारत में मिले। उन्होंने तीन व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई, जो मंदिर के निर्माण के लिए चंदा इक्ट्ठा करके साधू महाराज के साथ संपर्क रखेगी।

चमत्कार की घोषणा करके साधू महाराज अपनी कुटिया पर चले गए। सुखदेव ने थोड़ा फासला रखकर उनका पीछा किया।

साधू अपनी कुटिया में पहुंचा। उसके दोनों चेलों ने अपने झोलों से एक बोतल निकाली और वे तीनों कुछ पीने लगे। शायद शराब है ? सुखदेव ने सोचा।

दिन छिपने लगा था। रात की परछाइयां और अंधकार की कालिमा कुटिया के आस-पास फैल गई थी।

सुखदेव कुटिया के और समीप गया। उसका विश्वास पक्का हो गया। कुटिया में बैठे वे तीनों शराब पी रहे थे—एक ही बोतल को मुंह लगाकर, बारी-बारी से। वे दिल खोलकर हंस रहे थे।

"गुरुजी, अब तो हम लोगों की तीन पीढ़ियां तर जाएंगी, इस चमत्कार के बाद।" एक चेला बोला।

"गांव के भोले धर्मभीरू लोग हमें इतना धन देंगे कि देवी के मंदिर के साथ-साथ हमारे रहने के लिए एक पक्का घर भी बन जाएगा।" दूसरा बोला।

"बक-बक ही करते रहोगे या फिर चमत्कार का काम भी शुरू करोगे।" साधू ने उन दोनों को झिड़का।

"एक बात है, गुरुजी। यह धर्म का धंधा है खूब चंगा। हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा ही चोखा। धर्म के नाम पर इन अशिक्षित, अंधविश्वासी और धर्म भीरू लोगों से सब कुछ ऐंठा जा सकता है। खाने-पीने, कपड़े-लत्ते से लेकर...।"

"चुप करो। इसे खत्म कर, काम में जुट जाओ।" साधू ने आदेश दिया।

शराब पीकर वे तीनों अपने काम में जुट गए।

एक चेले ने लगभग एक वर्ग फुट का छह इंच नीचा गड्ढा खोदा। दूसरे ने एक बड़े थैले से कोई वस्तु निकालकर उस गड्ढे में भर दी। फिर मिट्टी की एक पतली सी परत उस पर डाल दी। इसके बाद उन्होंने गड्ढे के बीचों-बीच कुछ रखा। चारों तरफ मिट्टी से उन्होंने उस गड्ढे को भर, भूमि समतल कर दी। अंत में साधू ने उस स्थान पर एक लोटा पानी छिड़क दिया।

सुखदेव यह सब नाटक देख रहा था। उसके सामने इन ठगों की पूरी योजना का रहस्योद्घाटन हो चुका था। उसे विश्वास हो गया कि ये तीनों अपने चमत्कार-प्रदर्शन में सफल हो जाएंगे। इसके बाद भोले-भाले गांव वाले हमेशा के लिए इनके चंगुल में फंस जाएंगे।

उदास, चिंतित और परेशान-सा सुखदेव गर्दन लटकाए अपने घर की ओर चल दिया। उसे विश्वास हो गया कि यह धूर्त साधू वही पटवारी है। वह शिक्षित था। उसे विज्ञान और कृषि के विषय में ज्ञान था। चमत्कार का जो तरीका इसने अपनाया है, वह एक शिक्षित व्यक्ति के दिमाग की ही उपज हो सकती है।

पर अब इनके चमत्कार का भंडाफोड़ कैसे किया जाए ? इसी समस्या पर विचार करते-करते सुखदेव घर पहुंच गया।

मां संध्या-आरती कर रही थी। बापू बराबर के कमरे में सूखे चने की बोरियों को ठीक से लगा रहे थे। वह भी मां के साथ हाथ जोड़, भगवान के सामने आंखें मूंद कर खड़ा हो गया। जितनी देर में मां ने आरती गाई, उतनी देर में सुखदेव को अपनी समस्या का समाधान मिल गया। आरती खत्म करके मां ने उसे प्रसाद का बताशा दिया।

सुखदेव ने बताशा खाया। मुंह में मिठास घुल गई। उसने सामने दीवालगिरी पर मां के भगवान को देखा। वहां एक तस्वीर राम दरबार की, एक छवि कृष्णजी की, एक छोटी-सी मूर्ति शंकर भगवान की, आरती का दीवा और धूप लगाने के लिए कटोरी रखी थी।

बन गया काम, सुखदेव ने सोचा। उसने खुरपी उठाई। चुपचाप वह घर के पिछवाड़े गया। आठ-दस इंच वर्ग का उसने लगभग चार-पांच इंच गहरा एक गड्ढा खोदा। फिर उसमें उसने अंदर से लाकर दो किलो सूखे चने भर दिए। मिट्टी की एक हल्की-सी परत उन चनों पर चढ़ा दी। फिर दबे पांव वह अंदर गया। मां की नजरें बचाकर वह चुपचाप शंकर भगवान की छोटी मूर्ति उठा लाया। उसे चनों के बीचों-बीच उसने इस प्रकार से रखा कि वह भूमि के समानांतर करीब आधा इंच नीचे रहे। फिर उसने मिट्टी से उस गड्ढे को भली-भांति भर दिया। बाद में उस पर पानी का छिड़काव कर दिया।

अगले दिन सुबह सरपंच के घर में क्या, पूरे गांव में तहलका मच गया। सुखदेव की मां नदी से नहाकर लौटी और उसने पूजा शुरू की, तो वह बुरी तरह चौंक गई। उसके शंकर भगवान अंतर्ध्यान हो चुके थे।

"अरे, शंकर भगवान अंतर्ध्यान हो गए।" वह चीख पड़ी।

सचमुच ? यह एक और विस्मयकारी चमत्कार था। घर के सारे लोग एकत्र हो गए। पूरा घर छान मारा। शंकर की मूर्ति का कहीं कोई पता नहीं था।

तत्काल ही यह समाचार पूरे गांव में फैल गया। पलक झपकते गांव वालों की भीड़ सरपंच के घर के बाहर एकत्र हो गई। लोगों ने इस आश्चर्य पर दांतों तले उंगली दबा ली।

"समझ में नहीं आ रहा गांव में यह कैसी विचित्र घटनाएं घट रही हैं।" सरपंच बोला।

"गांव में पाप बढ़ रहे हैं। इसीलिए भगवान अंतर्ध्यान हो गए।" भीड़ में से कोई बोला।

"क्यों न हम संतजी के पास जाकर पूछें कि भगवान शंकर हम से क्यों रूठ कर चले गए हैं।" भीड़ में से आवाज आई।

"हां, यह ठीक।" सरपंच ने कहा।

पूरी भीड़ नदी-किनारे बनी साधू की कुटिया की ओर चल दी । सरपंच के साथ सुखदेव भी था ।

साधू ने भीड़ को अपनी कुटिया की तरफ आते देखा, तो पहले वह घबराया । पर शीघ्र ही उसने अपने को संयत कर लिया । भीड़ का अगुवा था सरपंच । उसे देखते ही साधू बोला, "कहो बच्चा, क्या विपत्ति आ गई ?"

"महाराज, गजब हो गया। रात को हमारे घर से शंकर भगवान गायब हो गए ।" सरपंच की पत्नी बोली ।

"क्या सचमुच ?" साधू चौंका ।

"हां, कल सायं मैंने संध्या-पूजा की थी। बाद में भोग लगाकर प्रभु को शयन कराया था । प्रातः सेवा के लिए परदा हटाया तो क्या देखती हूं, शंकर भगवान अंतर्ध्यान हो चुके हैं ।" सुखदेव की मां ने चिंतित स्वर में कहा ।

"एक मिनट ।" कहकर साधू ने आंखें मूंद लीं । वह सोचने लगा, यह क्या चक्कर है ! फिर उसे एक तरकीब सूझ गई । उसने आंखें खोलीं और शांत स्वर में बोला, "चिंता मत करो । मैंने ध्यान लगाकर सब कुछ देख लिया है । शंकर भगवान मेरी देवी को इस गांव में पधारने का निमंत्रण देने गए हैं । उसके बाद वह अपने कैलाश धाम चले जाएंगे ।"

साधू ने सोचा कि जब शंकर की मूर्ति गुम हो गई है, तो यही कहानी गांव वालों को प्रभावित करेगी ।

तभी सुखदेव भीड़ में से बाहर आया और ऊंचे स्वर में बोला, "महाराज, आपकी बात एकदम गलत है । कल रात शंकरजी मेरे सपने में आए थे । कह रहे थे—एक हफ्ते के लिए कैलाश की यात्रा पर जा रहा हूं । इतवार तक वापस आ जाऊंगा। इस बार मैं सरपंचजी के घर के पिछवाड़े भूमि के अंदर से प्रकट होने वाला हूं ।"

"ऐसा !" साधू चौंका। वह अंदर-ही-अंदर घबरा-सा गया।

"सुखदेव, क्या यह सच है ?" सरपंच ने पूछा ।

"हां, बापू ।" सुखदेव ने शांत भाव से कहा ।

"कमाल हो गया । इस गांव पर भगवान की इतनी कृपा । एक ही दिन में देवी मैया और शंकर भगवान दोनों प्रकट होंगे ।" सरपंच बोला ।

भीड़ में हलचल मच गई ।

साधू परेशान था। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि आखिर यह चक्कर क्या है ?

भीड़ वहां से चली आई ।

शनिवार की रात से ही गांव वालों ने दो समुदाय बना लिए । एक झुंड साधू की कुटिया पर चला गया और दूसरा सरपंच के घर के पिछवाड़े तुलसी-चौरे के पास जम गया। दोनों जगह रतजगा हुआ। उधर देवी की भेंट गाई जा रही थी, तो इधर शिव-स्तुति चल रही

थी। पौ फटी। प्रातःकाल की सुनहरी किरणों के साथ ग्रामवासियों ने यह अद्भुत दृश्य देखा।

साधू की कुटिया के बाहर देवी की मूर्ति प्रकट हो गई थी। उनका श्रीमुख चमक रहा था। लोगों ने देवी मां की जय-जयकार से आकाश गुंजा दिया।

इधर सरपंचजी के घर से अंतर्ध्यान हुए शंकर भगवान भूगर्भ से बाहर आ गए थे। कमर तक वह पृथ्वी से बाहर थे और कमर से नीचे भूमि के अंदर।



भक्तिभाव से गांववासी जैसे विक्षिप्त हो गए। वे शंकर भगवान की जय-जयकार करने लगे।

"अब तो दो मंदिर बनने चाहिएं। एक देवी का और दूसरा शंकर का।" भीड़ में से कई लोगों ने कहा।

सुखदेव बेहद खुश था। उसकी योजना एकदम सफल रही थी।

भीड़ खुशी और भक्तिभाव से झूम रही थी। तभी सुखदेव ने भीड़ को संबोधित करके कहा, "भाइयो! साधू की कुटिया पर चलें। वहीं पर मैं आपको एक रहस्य की बात बताऊंगा।"

"चलो...।" भीड़ ने समवेत स्वर में कहा।

भीड़ साधू की कुटिया की ओर चल पड़ी। सुखदेव ने जय ठाकुर को साथ ले लिया। वह गांव का नाई था। भीड साधू की कुटिया पर पहुंची। जयदेव साहू ने वहां एकत्र ग्रामवासियों को बताया कि सरपंचजी के घर में शंकर भगवान प्रकट हुए हैं।

"तो सुखदेव का सपना सच हो गया ?" वहां मौजूद गांव वालों ने पूछा।

"हां, और लगता है इधर संतजी का सपना भी सच हो गया है।" सरपंच ने कहा।

"हां।" नए पटवारी ने कहा।

"सचमुच बड़ा विस्मयकारी चमत्कार है।" सरपंच ने आकाश की ओर मुंह कर, हाथ जोड़कर कहा।

"बापू ! यह चमत्कार-वमत्कार कुछ नहीं है। यह साधू महाराज और मेरी चाल है।" सुखदेव ने कहा।

"क्या ?" सरपंचजी चौंके।

भीड़ स्तब्ध रह गई।

"बापू ! जरा इन साधू महाराज पर निगाह रखें। यह भागने न पाए। यह साधू नहीं, हमारा पुराना भ्रष्ट पटवारी हैं। अब इन्होंने यह ढोंग रचा है।" सुखदेव बोला।

"असत्य भाषण मत कर बच्चा, वर्ना शाप देकर भस्म कर दूंगा।" साधू चीखा।

"मैं नहीं डरता तुम्हारी गीदड़ भभकियों से। मैं ठाकुर को ले आया हूं। अभी तुम्हारी हजामत करके तुम्हारी असलियत सब गांव वालों को दिखा दूंगा।" सुखदेव ने क्रोध में भरकर कहा।

साधू समझ गया कि उसका खेल खत्म हो गया है। उसने अपने साथियों के साथ भागने की कोशिश की। पर गांव वालों ने उसे पकड़ लिया। जय नाई ने उसकी दाढ़ी सफा कर दी। बाल काट दिए। गांव वालों ने देखा—यह तो वही भ्रष्ट और चोर पटवारी था।

बाद में सुखदेव ने गांव वालों को देवी और शंकर के प्रकट होने के चमत्कार का रहस्य बता दिया। उन्होंने भूमि में ढेर सारे चने दबा दिए थे। उसके ऊपर देवी तथा शंकर की मूर्तियां रख दीं। एक सप्ताह तक वे उस स्थान पर पानी का छिड़काव करते रहे। चने अंकुरित हुए। बीज अंकुरित होता है, तो ऊपर उठता है। चूंकि काफी मात्रा में चने अंकुरित हुए थे, वे पर्याप्त वेग से ऊपर उठे। उस वेग के साथ शंकरजी और देवी की मूर्तियां भी भुरभुरी तथा गीली मिट्टी को भेद कर भूमि के बाहर आ गईं।

ग्रामवासियों के लिए कृषि का यह सिद्धांत कोई नई बात नहीं थी। वे चमत्कार के रहस्य को समझ गए।

सुखदेव ने भीड़ से कहा, "भाइयो ! देखा आपने कि हमें कैसे ठगा जाता है। हमें आंखें मूंद कर इन चमत्कारों पर विश्वास नहीं कर लेना चाहिए। हमें अंधविश्वासों के मकड़ी-जालों को साफ करना होगा। साधू के वेश में घूमते इन ठगों से हमें सावधान रहना चाहिए।"

गांव वालों ने सुखदेव की प्रशंसा की। उन लोगों ने पुराने पटवारी और उसके साथियों को पकड़कर पुलिस के हवाले कर दिया।

8. सच के रूप

आधी छुट्टी में तीनों ने अपने-अपने लंच पैकेट खोले। प्रीति की मम्मी ने पनीर के सैंड-विच रखे थे। सुदर्शन आहलूवालिया सरसों का साग और मक्के की रोटी लाया था। सिकंदर के पास चिकन पैटीज थीं।

रोज की तरह तीनों ने एक साथ मिलकर खाना खाया। वे एक-दूसरे के डिब्बे से चीजें लेकर खा रहे थे।

"प्रीति, तेरे सैंडविच तो बड़े स्वादिष्ट हैं।" आहलूवालिया बोला।

"सुदर्शन, तेरी मक्के की रोटी का भी जवाब नहीं।" सिकंदर ने हल्के स्वर में कहा।

"सिकंदर, तेरी चिकन पैटीज में बड़ी मिर्चें हैं। मेरी आंखों से तो आंसू आ गए।" प्रीति ने रुमाल से आंखें पोंछते हुए कहा।

"सिकंदर ने प्रीति का मजाक उड़ाते हुए कहा, "लड़कियों की भली कही। उनकी आंखों में तो बात करते-करते आंसू आ जाते हैं।"

प्रीति चिढ़ गई। उखड़कर बोली, "तुम कहना क्या चाहते हो ?"

"कुछ नहीं। लड़कियों में चींटी जैसी जान होती है। बात करते उनके आंसू बहने लगते हैं।" सिकंदर बोला।

"लड़के कौन से बहादुर होते हैं ?" प्रीति ने कहा।

"तुम लोग बेकार की बहस में पड़ गए ! मैं सोच रहा हूं कि तुम्हें एक रोचक किस्सा सुनाऊं।" सुदर्शन बोला।

"किस्सा ? कैसा ?" प्रीति ने पूछा !

"कल शाम को हमारे लान में एक बहुत बड़ा गिरगिट निकल आया था।" सुदर्शन बोला।

सिकंदर हंस पड़ा। बोला, "गिरगिट का निकलना एक रोचक किस्सा है इनके लिए।"

"गिरगिट तो लान में रहते ही हैं। गिरगिट बड़ा गंदा और डरावना होता है। मुझे तो उसे देखते ही फुरफुरी आ जाती है।" प्रीति ने कड़वा-सा मुंह बनाकर कहा।

सुदर्शन ने हंसकर पूछा, "अगर तुमने सचमुच गिरगिट देखा है, तो बताओ वह कैसा होता है ?"

प्रीति ने उखड़कर कहा, "तो क्या तुम समझते हो, मैं झूठ बोल रही हूं ?"

सुदर्शन बोला, "नहीं...यह बात नहीं। मैं तो..."

प्रीति ने उसकी बात बीच में ही काट कर कहा, "सुनो, वह एक बड़ी छिपकली की तरह का होता है। उसकी पूंछ लम्बी होती है और मुंह बहुत डरावना होता है। वह जोर-जोर से सांस लेता है।"

"उसका रंग कैसा होता है?" सुदर्शन ने पूछा।

प्रीति बोली, "उसका रंग नीला होता है। एकदम खुले आकाश जैसा हल्का नीला।"

"झूठ। इसका मतलब है कि तुमने गिरगिट देखा ही नहीं है।" सिकंदर ने प्रीति को छेड़ा।

"झूठे होंगे तुम, हमारे लॉन में कई नीले गिरगिट हैं।" प्रीति ने दृढ़ता से कहा।

"प्रीतिजी, गिरगिट का रंग हरा होता है। एकदम पेड़-पौधों की हरी पत्तियों-सा।" सिकंदर बोला।

"मैं नहीं मानती।" प्रीति बोली।

"मानो चाहे मत मानो। तुम्हारे न मानने से गिरगिट का रंग बदलने से रहा। उसका रंग हरा होता है। तभी तो वह झाड़ियों, पत्तियों और घास में ऐसे छिप जाता है कि कोई उसे देख नहीं पाता।" सिकंदर ने कहा।

सुदर्शन ने जोर से सिर हिलाया और फिर उनका मजाक उड़ाते हुए बोला, "मुझे लगता है कि तुम दोनों में से किसी ने भी गिरगिट नहीं देखा है। असल में गिरगिट का रंग कत्थई होता है। एकदम पेड़ के तने और टहनियों जैसा। तभी तो पेड़ों और झाड़ियों में बैठा गिरगिट दिखाई नहीं देता।"

"एकदम गलत, गिरगिट हरा होता है।" सिकंदर बोला।

जोर से गर्दन झटककर प्रीति ने कहा, "गिरगिट नीला होता है।"

"तुम लोग बेवकूफी की बातें कर रहे हो। कल शाम मैंने अपनी आंखों से देखा था। गिरगिट का रंग कत्थई होता है," सुदर्शन ने ऊंचे स्वर में कहा।

—मैंने भी अपनी आंखों से देखा है, कानों से नहीं।

—बिल्कुल झूठ।

—तुम दोनों झूठे हो।

—गिरगिट हरा होता हैं।

—गिरगिट नीला होता है।

—गिरगिट कत्थई होता है।

—तुम झूठ बोल रहे हो।

—तुम दोनों बकवास कर रहे हो।

—जबान संभाल कर बात करो, वर्ना...।

—वर्ना तुम क्या कर लोगे?

—मैं तुम्हें छठी का दूध याद करा दूंगा, समझे।

—ऐसा...?

कौन क्या कह रहा था, इसका कोई महत्व नहीं था। महत्वपूर्ण बात यह थी कि एक महत्वहीन मसले पर तीन पक्के दोस्त बहस करते-करते लघु महाभारत पर उतर आए थे।

संयोग से छुट्टी खत्म हो गई और बच्चों के आने से पूर्व ही मैडम आ गई थीं। वह क्लासरूम के दरवाजे पर ठिठकीं। फिर अंदर आकर उन्होंने पूछा, "अरे बच्चों, आज किस बात पर लड़ रहे हो ?"

"मैडम, यह सुदर्शन बेकार में झगड़ रहा है।" प्रीति ने शिकायत की।

"मैडम, प्रीति और सिकंदर झूठ बोलते हैं।" सुदर्शन बोला।

"झगड़े की शुरुआत सुदर्शन ने की थी।" प्रीति बोली।

टीचर ने प्यार से कहा, "तुम तीनों तो पक्के दोस्त हो। फिर आज किस बात पर लड़ाई हो गई ?"

प्रीति ने उत्तर दिया, "गिरगिट के रंग पर।"

टीचर ने आश्चर्य से पूछा, "गिरगिट के रंग पर ?"

"हां मैडम। मैं कहता हूं गिरगिट कत्थई रंग का होता है।" सुदर्शन ने कहा।

"मैं कहती हूं, वह नीला होता है।" प्रीति बोली।

"मैं कहता हूं, वह हरा होता है।" सिकंदर ने कहा।

टीचर, जो पास खड़ी उनकी बातचीत सुन रही थीं, मुस्कराईं और बोलीं—"समझी। तो तुम लोग गिरगिट के रंग की बात करते-करते मुक्केबाजी पर उतर आए हो।"

तीनों ने एक स्वर में कहा—"मैडम फिर आप ही बताइए, हम तीनों में कौन ठीक है ?"

टीचर ने गंभीर स्वर में कहा—"मेरे प्यारे बच्चों ! जब कभी बहस हो रही हो, तो लड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं है। लड़ते तो वे हैं, जिन्हें अपने ज्ञान पर और अपने ऊपर विश्वास नहीं होता।"

तब तक बाकी बच्चे भी आ गए। टीचर ने सब बच्चों को संबोधित करते हुए कहा—"बच्चो ! बहस का उद्देश्य होता है सत्य तक पहुंचना। परंतु बहस संघर्ष का माध्यम बन जाए, तो विनाश निश्चित है।"

"सारी मैडम !" वे तीनों समवेत स्वर में बोले।

"बच्चो ! अगर तुम मुझसे पूछोगे, तो मैं कहूंगी गिरगिट सिंदूरी लाल होता है।" टीचर ने कहा।

उन तीनों ने घोर आश्चर्य से कहा, "तो क्या हम तीनों ही गलती पर थे ?"

"नहीं मेरे बच्चो ! तुम तीनों भी सही थे, और मैं भी गलत नहीं हूं।" टीचर बोलीं।

"वह कैसे, मैडम यह कैसी पहेली है ? सच्चा तो हम चारों में से सिर्फ एक ही हो सकता है।" प्रीति बोली।

टीचर ने शांत स्वर में कहा—बच्चो ! गिरगिट ऐसा जीव है, जिसे प्रकृति ने अपना रंग बदलने का वरदान दिया है। जब वह गुलाब की झाड़ियों में होता है, तो वह गुलाबी रंग का हो जाता है। पेड़ के तने पर उसका रंग कत्थई हो जाता है। पत्तियों और घास में हरा। खुले मैदान में नीला। और हां, जब उसे पत्थर मारो, तो वह पीला हो जाता है। इस तरह गिरगिट का रंग, उसका सुरक्षा कवच है।



"शायद इसीलिए यह मुहावरा बना है—गिरगिट की तरह रंग बदलना।" प्रीति ने कहा।

सुदर्शन बोला,—"मैडम यह गिरगिट बड़ा चालाक जीव है।"

"हां, बच्चे ! इसीलिए मैंने कहा था कि हम चारों सही थे। सत्य भी गिरगिट के रंग की तरह हरेक को अपने मनोभावों के अनुकूल दिखाई देता है।" टीचर ने कहा।

"तो हमने बेकार ही झगड़ा किया।" सुदर्शन बोला।

टीचर ने प्यार से कहा, "हां बच्चो, तुम्हें हमेशा प्यार से मिल-जुलकर रहना चाहिए। तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिए कि जो तुम कहते हो, मात्र वही सच है और बाकी सब झूठे हैं। हमें दूसरों के विचारों का भी आदर करना चाहिए। हो सकता है, वे भी सच हों, अगर ऐसा करोगे, तो क्लास क्या, पूरे देश और समूचे विश्व में शांति हो जाएगी।"

सारे बच्चों ने सिर झुकाकर इस महत्वपूर्ण सत्य को स्वीकार कर लिया।

9. रहस्यमय बीमारी

स्कूल के वार्षिक खेल चल रहे थे। तीन दिन से पढ़ाई बंद थी। सिर्फ विभिन्न खेलों की प्रतियोगिताओं में पूरा दिन बीत जाता था।

ठीक नौ बजे जूनियर और सीनियर विद्यार्थियों की टीमों के बीच क्रिकेट मैच शुरू होने वाला था। मैं सीनियर टीम का कप्तान था। वैसे मुझे अपनी जीत के विषय में पूरी तरह से आश्वस्त होना चाहिए था, पर न जाने क्यों आज मैं थोड़ा चिंतित और घबराया हुआ था।

इसके कई कारण थे। पहला, पिछले शनिवार को दोनों टीमों का परीक्षण (ट्रायल) मैच हुआ था। उस दिन हम लोग हारते-हारते बचे थे। यदि मैं 'कैप्टेन नॉक' न मारता, तो हमारी पराजय निश्चित थी। मैंने अस्सी रन बनाए थे, जब कि मेरी टीम के छह खिलाड़ी दोहरे अंक तक नहीं पहुंच पाए थे। दूसरा कारण था जनियर टीम में तीन शानदार गेंदबाजों की उपस्थिति। रवि बहुत सुंदर मीडियम फास्ट बालिंग करता है और गेंद को स्विग कराने में सक्षम है। मनोज कटर्स फेंकता है और वासवानी की स्पिन गेंदबाजी के सामने हमारे खिलाड़ी कच्चे कगार से ढह जाते हैं।

मेरी चिंता का तीसरा कारण था सुरेश की बीमारी। पता नहीं उसे क्या हुआ है? पिछले दो दिन से वह अस्वस्थ रहने के कारण अभ्यास करने भी नहीं आ रहा है। वह हमारी टीम का श्रीकांत है। वह प्रारम्भिक बल्लेबाज है। यदि एक बार उसकी निगाहें गेंद पर जम जाएं और वह खुलकर खेलने की स्थिति में आ जाए, तो बस फिर विपक्षी गेंदबाजों की ऐसी धुनाई करता है कि वे पानी मांग जाते हैं।

सुरेश होस्टल में रहता है। कल दोपहर को मैं उसके कमरे में उसे देखने गया था। वह चारपाई पर निर्जीव-सा पड़ा था। मैंने उससे पूछा था, "क्या हालचाल हैं, सुरेश?"

"ठीक नहीं हूं।" उसने मृतप्राय स्वर में उत्तर दिया।

"क्या हुआ?" मैंने पूछा।

"कुछ पता नहीं। लगता है जैसे शरीर से जान निकल गई है।" वह बोला।

"कमजोरी है, कुछ ताकत की दवा ले लो।" मैंने सुझाव दिया।

"वही तो नहीं ले पाया हूं।" सुरेश असहाय-सा बोला।

"मैं कुछ इंतजाम करूं?" मैंने पूछा।

"नहीं, धन्यवाद।" वह बोला।

"कल सुबह तक ठीक हो जा, यार। फाइनल मैच में तो खेलेगा न?" मैंने स्वार्थ से प्रेरित हो पूछा।

"जरूर", सुरेश ने मुझे आश्वासन दिया।

अब पौने नौ बज रहे हैं। मेरी टीम के सारे खिलाड़ी आ गए हैं, सिर्फ दो को छोड़कर। एक सुरेश और दूसरा करनानी। दूसरे की मुझे चिन्ता नहीं, क्योंकि वह विकेट कीपिंग करता है। मेरे पास बारहवें खिलाड़ी के रूप में विजय है, जो खूब बढ़िया विकिट कीपिंग कर लेता है। करनानी नहीं आया, तो विजय विकट कीपर बन जाएगा।

पर सुरेश क्यों नहीं आया ? उसने तो खेलने का वायदा किया था। वह नहीं खेला, तो हमारी बैटिंग कमजोर हो जाएगी। पलांश में मैंने सुरेश को बुलाने का फैसला कर लिया। मैं दौड़ता हुआ होस्टल में गया। सुरेश के कमरे में पहुंचा, तो देखा कि उसकी तबियत काफी खराब है। वह बिस्तरे पर पड़ा छटपटा रहा था। वह अपने हाथ-पांव इधर-उधर पटक रहा था। उसका चेहरा पीला पड़ा हुआ था। आंखें भी स्थिर नहीं थीं। उसकी दशा वास्तव में गंभीर थी।

"सुरेश, तेरी तबियत तो बहुत ज्यादा खराब है।" मैंने घबराकर कहा।

"हां यार। मेरा दम निकले जा रहा है।" बड़ी मुश्किल से वह बोल पाया।

"तूने स्कूल के डाक्टर को बुलाकर दिखाया ?" मैंने पूछा।

सुरेश ने सिर हिला दिया। उसे जैसे बोलने में भी तकलीफ हो रही थी।

"मैं बुलाकर लाऊं डाक्टर को ?" मैंने दरवाजे की तरफ बढ़ते हुए कहा।

"न…हीं…।" कष्ट से बोल पाया वह।

मैं पलटा। सुरेश के पास जाकर खड़ा हो गया। उसकी दशा सचमुच गंभीर थी। ऐसे में उसको डाक्टर को दिखाना चाहिए, नहीं तो उसके स्थानीय अभिभावकों को तो सूचना देनी ही चाहिए।

"मैं तुम्हारे अभिभावकों को खबर करूं ?" मैंने पूछा।

"नहीं…।"

"यह क्या नहीं-नहीं लगा रखी है। तू इतना बीमार…।" मेरी बात पूरी होने से पूर्व ही वह बोला, "सिक्स जीरो ऐट नाइन जीरो-जीरो पर फोन…प्रिंस को बोलना…फौरन मिले…।" बड़ी मुश्किल से सुरेश बोल पाया।

"प्रिंस कौन है, कोई रिश्तेदार है तेरा ?" मैंने पूछा।

सुरेश ने सिर हिलाकर मना कर दिया।

"फिर क्या डाक्टर है ?" मैंने पूछा।

इस बार सुरेश ने कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। "ठीक है, मैं अभी जाकर वार्डन के आफिस में जाकर डा० प्रिंस को फोन कर देता हूं।" मैंने उससे कहा।

मैं वार्डन के आफिस की तरफ चल पड़ा। रास्ते में सोचता रहा—सुरेश किसी भी अवस्था में नहीं खेल सकता। चलो, डाक्टर को सूचना देकर मैच खेलते हैं।

मैं वार्डन के आफिस में पहुंचा। वहां एक क्लर्क बैठा था। मैंने उसे सारी बात बताई। उसने फोन करने की आज्ञा दे दी। मैंने सुरेश के बताए हुए नंबर पर फोन किया, तो उधर से आवाज आई, "डाक्टर प्रिंसेज क्लीनिक।"

"देखिए, मैं स्काईलेंड पब्लिक स्कूल के होस्टल से बोल रहा हूं। मेरा दोस्त सुरेश बीमार है।" मैंने कहा।

"किस नम्बर कमरे में है?" उधर से पूछा गया।

"एक सो दस में।" मैंने उत्तर दिया।

ठीक है, उससे कहो कि डाक्टर साहब दो दिन से ससुराल में थे। कल रात को ही आए हैं। उसकी दवा आधे घंटे में पहुंच जाएगी, और उधर का फोन फटाक से बंद हो गया।

मैं उलझन में पड़ गया। मुझे सारा कांड थोड़ा रहस्यमय-सा लगा। डाक्टर का ससुराल जाना। फिर बीमारी के बारे में पूछे बिना दवा पहुंचाने का आश्वासन। मैं सुरेश के पास पहुंचा और उसे सूचना दी, "डाक्टर से संपर्क हो गया है। वहां से आधे घंटे में दवा भेजने को कहा है।"

सुरेश कुछ नहीं बोला। उसके चेहरे पर चमक आ गई—एकदम सुबह की खिली धूप-सी।

अचानक मुझे ख्याल आया—कहीं डा० प्रिंस सुरेश के फैमिली डाक्टर तो नहीं है। तभी वह सुरेश की बीमारी के बारे में सब कुछ जानते हैं।

"डा० प्रिंस तेरे फैमिली डाक्टर हैं?" मैंने अपने अनुमान की पुष्टि के लिए सुरेश से पूछा।

वह कुछ नहीं बोला। सिर्फ धीमे से मुस्करा दिया।

"तुझे बीमारी क्या है?" मैंने झुककर सुरेश की गर्दन पर हाथ रखकर देखा। मैंने सोचा था—कहीं इसे बुखार न आ गया हो। आजकल 'वायरस फीवर' महामारी के रूप में फैला हुआ है।

पर सुरेश का शरीर तो बर्फ की तरह ठंडा था। मैंने पूछा, "क्या रात को बुखार चढ़ा था?"

सुरेश मेरे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा था। अब उसने मुझे हाथ के इशारे से चले जाने को कहा।

मैंने कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा। नौ बजकर पांच मिनट हो रहे थे। इतनी कमजोरी के बावजूद भी उसे होश है और वह चाहता है कि मैं जाऊं और मैच शुरू करूं।

"गुड लक, जल्दी ठीक हो जाओ।" कहकर मैं भागता हुआ खेल के मैदान में पहुंच गया।

दोनों टीमें आपने-सामने खड़ी थीं। बीच में वाइस प्रिंसिपल साहिबा थीं। टॉस करने के लिए वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं।

मुझे देखते ही वाइस प्रिंसीपल ने पूछा, "कहां चले गए थे?"

मैंने संक्षेप में उन्हें सारी बात बता दी।

टॉस मैंने जीता और जूनियर टीम को पहले बल्लेबाजी करने का आमंत्रण दिया। तीस सीमित ओवर के मैच में बाद में बैटिंग करना लाभप्रद रहता है। आपको अपने लक्ष्य या मंजिल का पता होता है। लक्ष्यहीन होने पर भटकाव पैदा होता है। लक्ष्य का पता हो, तो उस तक साहस, परिश्रम और निष्ठा से पहुंचने का प्रयास तो किया जा सकता है।

जूनियर टीम ने बैटिंग शुरू की। हमारी बालिंग का कमाल देखिए कि कुल पच्चीस ओवर और चार बॉलों में, पौने दो घंटे के अंदर, हमने उनको सत्तर रन पर आउट कर दिया। पंद्रह मिनट का विश्राम हुआ। हम लोग कोक पी रहे थे कि तभी एक सुखद आश्चर्य उपस्थित हो गया। सुरेश उछलता-कूदता आ पहुंचा। वह एकदम ऐसा ताजा और चुस्त लग रहा था, जैसे कभी बीमार था ही नहीं।

"सुरेश तू क्या ठीक हो गया ?" मैंने घोर आश्चर्य से पूछा।

"हां", उसने बेफिक्री से कहा।

"डाक्टर प्रिंस आ...।"

मेरी बात को बीच में ही काटकर वह बोला, "फार्गेट एबाउट इट (इसे भूल जाओ)।"

मैं रहस्य के रेशमी जालों में उलझ गया। कैसा कुशल और अनुभवी डाक्टर है प्रिंस, जिसने आते ही जादू की छड़ी जैसी दवा से सुरेश को भला-चंगा कर दिया, उसमें नवजीवन, शक्ति और स्फूर्ति का संचार कर दिया।

हमारी बैटिंग शुरू हुई। इनिंग की शुरुआत की सुरेश और मालिक ने। पहली बॉल पर चौका मारकर सुरेश ने अपने इरादे स्पष्ट कर दिए। चालीस रन के स्कोर पर हमारा पहला विकेट गिरा। मलिक आउट हो गया। वन डाउन (एक खिलाड़ी आउट होने पर) मैं खेलता हूं। मैं बैटिंग करने गया। हम दोनों ने मिलकर सत्रह ओवर में ही बिना किसी और क्षति के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

हम नौ विकट से जीत गए थे। सुरेश को मैन आफ दी मैच (खेल का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी) घोषित किया गया। उसने पचपन रन बनाए, जिनमें तीन छक्के और आठ चौके थे। विजय के उल्लास में झूमते हुए हम कैंटीन गए। सुरेश ने सारे खिलाड़ियों को पार्टी दी। उसने करीब सौ रुपये खर्च कर दिए।

हमारा वार्षिक खेलकूद का कार्यक्रम संपन्न हो गया। नियमित पढ़ाई शुरू हो गई, पर मैं सुरेश की उस रहस्यम बीमारी को नहीं भूल पाया। जितनी रहस्यमय बीमारी थी, उतना ही अविश्वसनीय था उस डाक्टर का इलाज। दो घंटे पहले सुरेश की जो दशा थी, उसे देखकर तो कोई भी घबरा जाता।

मेरे अंतर्मन में एक बात समा गई। इसमें जरूर कोई चक्कर है। और फिर एक रविवार को शाम के साढ़े सात बजे सुरेश की विचित्र बीमारी पर पड़ा रहस्य का पर्दा उठ गया। मैं घर में बैठा टेलीविजन देख रहा था।

साढ़े सात बजे फीचर फिल्म रुकी। 'अंधी गलियां' कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। इसमें दिखाया जा रहा था—आज के युवा वर्ग में विष बेल-सी बढ़ती नशीले पदार्थों के सेवन की आदत। प्रस्तुतकर्ता ने कई युवाओं से साक्षात्कार कराया। अभी जीवन की शुरुआत है। पर कुसंगत में पड़कर युवा वर्ग स्मैक, हेरोइन, ब्राउन शुगर के विषपान का आदी हो जाता है। नशे में पड़े युवाओं की हालत। नशीले पदार्थ न मिलने पर उनकी दुर्दशा का चित्रण। उपचार और इस आदत को छुड़ाने के उपाय।

बड़ा उपयोगी कार्यक्रम था। एक नवयुवक को कई दिन स्मैक नहीं मिलती है। उसे छटपटाता हुआ दिखाया गया था। उसकी दशा देखी, तो लगा जैसे स्थिति एकदम परिचित-सी है। कमजोरी, छटपटाहट, हाथ-पांव झटकना। मेरे मानस-पटल पर बिजली-सी कौंध गई।

इस लड़के और उस दिन होस्टल में सुरेश की स्थिति में कितना साम्य है। तो क्या सुरेश को मादक पदार्थ लेने की लत पड़ गई है? तभी तो एक खुराक के बाद वह सामान्य हो गया था। हे भगवान यह क्या हुआ? एक मेधावी छात्र...गावस्कर बनने की संभावना वाला क्रिकेट-खिलाड़ी...इन मादक द्रव्यों के बेचने वाले देशद्रोहियों, समाज के शत्रुओं और मौत के सौदागरों के चंगुल में फंसकर नष्ट हो जाएगा।

अगले दिन लंच ब्रेक में मैंने सुरेश को पकड़ा और उसे होस्टल के कमरे में ले गया। मैं क्रोध में भरकर बोला, "सुरेश यह क्या किया तूने? तू इस विनाश के मार्ग पर कैसे पहुंच गया?"

"तू क्या कह रहा है? मैं कुछ समझा नहीं।" सुरेश ने नाटक शुरू कर दिया।

"बनो मत। मेरी समझ में सब कुछ आ गया है।" मैं बोला।

अचानक सुरेश भावुक हो गया। उसकी आंखों में आंसू आ गए। वह मुझसे लिपटकर बोला, "यार, मेरी जिंदगी तो बरबाद हो गई। बस, दो-एक साल और जीवित रहना है। उसके बाद...।"

"यह सब शुरू कैसे हुआ?" मैंने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"इस होस्टल में काफी लड़के इस चक्कर में हैं। फाइनल ईयर के मनोज मिश्रा ने मुझे इस पंक में फंसा दिया। एक दिन मैंने उसकी सिगरेट के तीन-चार कश ले लिए। बस, यहीं से मेरे विनाश की शुरुआत हो गई। उन लोगों ने मुझे नहीं बताया कि उस सिगरेट में स्मैक भरी है।" सुरेश रोते हुए बोला।

"मैं तुझे इस विनाशचक्र से निकालूंगा। तुझे नशे की यह आदत छोड़नी होगी।" मैं बोला।

"असंभव, तूने उस मैच वाले दिन मेरी हालत देखी थी? डाक्टर प्रिंस दो दिन के लिए जेल में बंद हो गया था। मुझे सप्लाई नहीं मिली। तूने मेरी हालत खुद अपनी आंखों से देखी थी।" सुरेश ने कहा।

"दृढ़ निश्चय और आत्म-विश्वास के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं है, सुरेश। तू सहयोग करेगा, तो मेरा काम आसान हो जाएगा। मैं तेरी चिकित्सा और उपचार का सारा प्रबंध करूंगा। बोल, तू तैयार है ?" मैंने पूछा।

"पता नहीं, क्या होगा ? एक बात है। मेरे घरवालों को पता नहीं चले। मेरे पापा दिल के मरीज हैं। यदि उनको पता चला कि उनका इकलौता बेटा विनाश के कगार पर पहुंच चुका है, तो वह जीवित नहीं बचेंगे।" सुरेश कातर स्वर में बोला।

"तुम मुझ पर विश्वास करो, सुरेश। मैं यह सारा काम इस तरह करूंगा कि सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। पर तू वायदा कर, कुछ भी हो जाए मेरा कहना मानेगा।" मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

"देखो," सुरेश अचकचाया।

"देखो-वेखो नहीं। जहां चाह, वहां राह। सुरेश, तेरे सामने सिर्फ एक ही विकल्प है। यदि जीवित रहना है, तो नशे के इस दैत्य के मुख से तुझे बाहर आना ही होगा, समझा।" मैं बोला।

सुरेश ने सिर झुकाकर मेरे समक्ष आत्म-सपमर्ण कर दिया।

मैं कई दिनों तक इस समस्या के बारे में सोचता रहा। अन्तत: मैंने अपनी योजना को अंतिम रूप दे दिया। मुझे तीन ओर से आक्रमण करना था—इस दानव पर विजय प्राप्त करने के लिए।

सर्वप्रथम सुरेश को तत्काल मादक द्रव्य-निरोधी उपचार के लिए किसी कुशल डाक्टर को सौंपना। दूसरा, होस्टल में नशीले पदार्थ सेवन करने की प्रवृत्ति को रोकने के लिए कड़े अनुशासन को लागू करवाना। तीसरे, डा० प्रिंस नामक इस मौत के सौदागर को पकड़वाना और वह भी ऐसे उच्च स्तर के माध्यम से, जिससे वह रिश्वत देकर छूट न पाए।

पहली समस्या शीघ्र ही हल हो गई। एक डा० गोयल हैं, जिन्होंने 'निवृत्ति' नामक क्लीनिक खोला हुआ है। उनके क्लीनिक में सुरेश जैसे युवाओं का उपचार होता है। मैंने वार्डन से परामर्श करके, बिना उसके अभिभावकों को सूचित किए, सुरेश को 'निवृत्ति' में भर्ती करा दिया। उसका उपचार प्रारंभ हो गया।

रही दूसरी समस्या। मैंने इस विषय में वार्डन से बातचीत की, तो वह मुझ पर बिगड़ पड़े। वह बोले, "मुझे पता है, तुम्हारे पापा गृह मंत्रालय में उच्च अधिकारी हैं। इसका यह मतलब नहीं कि तुम हमारे स्कूल और होस्टल के विद्यार्थियों पर कीचड़ उछालो।"

"सर, मैं कीचड़ नहीं उछाल रहा हूं। मैं तो चाहता हूं कि नशे का जो कैंसर हमारे युवा वर्ग में घुस आया है, उसे समूल नष्ट कर दिया जाए।" मैंने विनम्रतापूर्वक कहा।

"यह तुम कैसे कह सकते हो कि हमारे विद्यार्थी नशा करते हैं ?" वार्डन साहब ने पूछा।

"सर, जरा सुबह और रात को होस्टल के कमरों में गहन निरीक्षण कीजिए, तो पता चल जाएगा।" मैं बोला।

"तो तुम यह कहना चाहते हो कि मैं अपने कर्तव्य के पालन में ढील बरतता हूं।" वार्डन बिगड़े।

वार्डन साहब के असहयोगपूर्ण रवैये को देखकर मैंने उनसे आगे कुछ नहीं कहा। मैं बाद में वाइस प्रिंसीपल साहिबा से मिला। बड़ी शालीनता और विनम्रता से मैंने उन्हें सारी बात बताई।

उन्होंने बड़ी शांति और सद्भाव से मेरी बात सुनी। वह हतप्रभ रह गईं। उन्होंने वाइस प्रिंसीपल के नाते होस्टल के कई अचानक निरीक्षण किए। कई लड़कों को नशे की अवस्था में पकड़ा।

वार्डन साहब को बदल दिया गया। बीमार लड़कों को उनके घर भेज दिया गया। एक सख्त अनुशासन प्रिय अध्यापक को होस्टल का वार्डन नियुक्त किया गया। होस्टल की सुरक्षा-व्यवस्था को कस दिया गया। बाहर का कोई व्यक्ति होस्टल में जाकर विद्यार्थियों से सीधे नहीं मिल सकता था। उसे वार्डन की उपस्थिति में ही मिलने की आज्ञा दी जाती। होस्टल में तहलका मच गया। पर रहस्यमय बीमारी के नए हमलों से पीछा अवश्य छूट गया।

डा० प्रिंस के साथ मैंने अच्छा मजाक किया। मुझे उनका नंबर याद था। अतः एक दिन मैंने उस नंबर पर फोन किया।

"हैलो, क्या मैं डा० प्रिंस से बात कर सकता हूं?"

"आप कौन बोल रहे हैं?" उधर से आवाज आई।

"विकास माथुर।" मैं बोला।

"कहां से?"

"स्काईलैंड पब्लिक स्कूल से।"

"अरे भई, वहां तो बड़ी गड़बड़ मची है। वह मोर्चा तो हमारे हाथ से निकल गया।" डाक्टर ने निराशा भरे स्वर में कहा।

"डाक्टर साहब मुझे कई दिन से वायरस बुखार है। क्या मैं आपके क्लीनिक आ सकता हूं?" मैंने नाटक किया।

"नहीं, नहीं...तुम ऐसा करो, ओबेराय होटल के फ्लाई ओवर के नीचे मिलो। मेरा आदमी हरे रंग की मारुति में उधर ठीक दो बजे तुम्हें मिलेगा, समझे।" डा० प्रिंस ने कहा।

"बहुत अच्छा, डाक्टर साहब," कहकर मैंने फोन बंद कर दिया। उसके बाद मैंने पापा से फोन पर संपर्क किया और उनको इस कार्यक्रम के बारे में बता दिया। पापा ने क्राइम ब्रांच के डिप्टी सुपरिटेंडेंट से पहले ही बातचीत कर ली थी।

डा० प्रिंस को पकड़ने के लिए जाल बिछ चुका था। ठीक दो बजे मैं नियत स्थान पर था। पास ही सादे कपड़ों में अस्त्र-शस्त्र से लैस पुलिस कर्मी उपस्थित थे। दो बजकर दस मिनट पर हरे रंग की एक मारुति कार वहां आकर रुकी। उसे एक दाढ़ी वाला व्यक्ति चला रहा था। ड्राइवर के पास ही एक नवयुवक बैठा था। उसने आंखों पर काला चश्मा लगाया

हुआ था। कार सड़क के दूसरी तरफ थी। मैंने हाथ उठाकर अपनी उपस्थिति का संकेत दिया। बीच सड़क पर ट्रैफिक था। मैं सड़क पार करने का उपक्रम कर रहा था।

तभी दो पुलिस कर्मियों ने दो तरफ से आकर मारुति में आगे की सीट पर बैठे उन दोनों बदमाशों की कनपटी पर पिस्तौल रख दी। बिना भाग-दौड़, मारामारी, फिल्मी सीन के वे दोनों व्यक्ति गिरफ्तार कर लिए गए।



पुलिस ने इस कांड में आगे तहकीकात की, तो शहर के एक फार्म हाउस से करोड़ों रुपयों की हशीश और ब्राउन शुगर बरामद हुई। इस प्रकार नशीले पदार्थों के एक बड़े अंतर्राष्ट्रीय तस्कर गिरोह का सफाया हो गया।

करीब एक मास के पश्चात सुरेश को अस्पताल से छुट्टी मिल गई। वह एकदम स्वस्थ एवं सामान्य था। उसकी नशे की आदत छूट चुकी थी।

मैं उसे लेने अस्पताल गया। छुट्टी पाकर वह मुझसे लिपट गया। उसकी आंखों में आंसू थे। वह भर्राए स्वर में बोला, "विकास, तूने मुझे नई जिंदगी दी है। तेरा यह अहसान मैं जिंदगीभर नहीं भूलूंगा।"

मेरी आंखें भी खुशी से नम हो गईं—सफलता के बाद मिले इस कृतज्ञताज्ञापन से।

10. इतिहास दोहराता है

मैं बड़ी उलझन में पड़ा हुआ हूं। मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा है। पांडेजी को सब कुछ सच-सच बता दूं या फिर तीस साल पहले अपने जीवन में घटी उस अप्रत्याशित घटना को हमेशा के लिए भुला दूं?

कल रात मैंने अपनी पत्नी नासिरा से इस बारे में परामर्श किया था। वह बोली, "अब छोड़िए भी। क्या खास अहमियत है उस बात की। फिर, आज इतने लम्बे अरसे के बाद हम दोनों के अलावा इस बात को जानता ही कौन है? यहां तक कि हमारे बच्चों तक को उसका पता नहीं।"

नासिरा की सलाह में व्यवहार कुशलता थी। पर न जाने क्यों मेरा अंतर्मन कह रहा था—शादी-विवाह के मामले बड़े पेचीदे होते हैं। जिंदगी-भर के रिश्ते जुड़ते हैं। अगर कोई महत्वपूर्ण या अप्रिय बात बताने से रह जाए और बाद में पता चले, तो संबंधों में दरार पड़ने की संभावना रहती है।

"नासिरा, अगर बाद में पांडेजी को यह बात पता चली तो?" मैंने शंका व्यक्त की।

"कौन बताएगा?" नासिरा ने पूछा।

"कोई भी। किसी भी तरह पता चल सकती हैं।" मैंने कहा।

"तो क्या होगा? हमने किसी का माल मारा है या कहीं डाका डाला है?" नासिरा उत्तेजित हो गई।

"नासिरा, तुम तो जानती हो कि हम भारतवासी जाति और धर्म के मामले में कितने तंगदिल हैं। आज दुनिया ने कितनी तरक्की कर ली है। वैज्ञानिकों ने हमें चांद पर पहुंचा दिया है। पर हम लोग आज भी जाति, धर्म और संप्रदाय को लेकर दंगा-फसाद करते रहते हैं।" मैंने नासिरा को समझाते हुए कहा।

"यही तो हमारी बदकिस्मती है।" नासिरा बोली।

"आज सारी दुनिया में अंतर्राष्ट्रीय विवाह हो रहे हैं। पर हमारे देश में जरा कोई अपनी जाति या धर्म से बाहर जाकर शादी करे, तो पता नहीं क्यों लोगों को लगता है जैसे आसमान फट पड़ा है। मैं समझता हूं कि हमें पांडेजी को सब कुछ साफ-साफ बता देना चाहिए। बाद में यह सुनने को न मिले कि हमने उनका धर्म भ्रष्ट कर दिया या यह बात छिपाकर हमने उन्हें अंधेरे में रखा।" मैंने कहा।

"ठीक है, जैसी आपकी मर्जी।" नासिरा ने मेरे सामने हथियार डाल दिए।

पांडेजी के लिए शाम के चाय-नाश्ते का प्रबंध करने नासिरा अंदर रसोईघर में चली गई। मैं कमरे में अकेला रह गया। हमारी बेटी शबनम कुछ देर पहले कालिज से लौटी थी।

वह कपड़े बदलकर हल्का-सा शृंगार कर रही थी। कबीर हमारा बेटा है, शबनम से दो वर्ष बड़ा। वह बंबई में एक बहुराष्ट्रीय कम्पनी में मैकेनीकल इंजीनियर है। कम्पनी के काम से दिल्ली आया है, पर इस समय वह दोस्तों के साथ कहीं घूमने चला गया है।

आज पांडेजी अपनी पत्नी और बेटी के साथ एक औपचारिकता का निर्वाह करने आ रहे हैं। वह है शबनम को देखना।

पांडेजी पत्रकार हैं। वह एक स्थानीय अखबार में सहायक सम्पादक हैं। पत्रकारिता के जगत में उनकी खूब ख्याति है। जमकर लिखते हैं सांप्रदायिक एकता को बढ़ावा देने के बारे में और जाति-पांति की संकीर्ण विचारधारा के विरोध में उन्होंने खूब जमकर लिखा है।

मैं पांडेजी को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता। परंतु मेरे कार्यालय में काम करने वाले एक मित्र हैं, जो पांडेजी को भली-भांति जानते हैं। वह बता रहे थे कि पांडेजी बड़े शुद्ध ब्राह्मण हैं, और उन्हें इस बात का गर्व है।

इन्हीं पांडेजी का लड़का राकेश और हमारी शबनम साथ-साथ पढ़ते थे। दोनों में प्रेम हो गया। राकेश को सरकारी विभाग में नौकरी भी मिल गई। इधर शबनम भी कालिज में लेक्चरर हो गई है।

हम लोगों ने लड़की के विवाह के लिए लड़का तलाशना शुरू किया और उसकी चर्चा की, तो एक दिन शबनम ने अपनी मां से कहा "मम्मी आप लोग परेशान न हों। मेरी शादी हो जाएगी।"

"क्यों, क्या कोई तलाश कर लिया है?" नासिरा ने यूं ही मजाक में पूछा।

शबनम ने सिर झुकाकर यह बात स्वीकार कर ली। हम दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे को आश्चर्य से ताकते रह गए। फिर नासिरा बोली, "अरे तो इसमें शरमाने की क्या बात है? हम कोई बम्बइया फिल्मों के आम जालिम मां-बाप नहीं, जो अपनी बेटी को उसके मन-पसंद लड़के से शादी करने की इजाजत न दें।"

"ओह, यू आर ग्रेट मम्मी," शबनम खुश हो गई।

"शबनम, तुम एक बात सुनकर चौंक जाओगी।" नासिरा बोली।

"क्या बात है मम्मी?" शबनम ने पूछा।

"मैंने और तुम्हारे पापा ने भी प्रेम-विवाह किया था," नासिरा ने गर्व से कहा।

"सच मम्मी? तब इतने सालों पहले," विस्मय से शबनम की आंखें चौड़ी हो गईं।

"हां, यह सच है बेटी। आज के इंसान को प्रेम-मोहब्बत की कद्र ही नहीं। सच्चा प्रेम ईश्वर का रूप होता है। प्रेम जोड़ता है और नफरत तोड़ती है, अलगाव पैदा करती है। पता नहीं हम लोग कब समझेंगे यह सब।" नासिरा बोली।

"ठीक है बेटी। तुम राकेश से कहना, वह अपने मम्मी-पापा से बात कर ले। अगर वे लोग भी सहमत हों, तो हम फिर अपने स्तर पर इस बारे में अंतिम निर्णय कर लेंगे।" मैंने कहा।

शबनम ने राकेश को इस बारे में सब बताया। राकेश ने अपने मम्मी-पापा से बातचीत की। वे सहमत हो गए। पहले दौर की रस्मी बातचीत के लिए वे आज शाम की चाय पर तशरीफ ला रहे हैं।

सब कुछ ठीक-ठाक है। पर मेरे अंतर में एक कांटा-सा कसक रहा है। मेरे कार्यालय के मित्र शुक्ला की बात मेरे अंतर्मन में अंकित है—"पांडेजी अपने को बहुत उच्च श्रेणी के ब्राह्मण मानते हैं। चूंकि तुम भी शर्मा यानी ब्राह्मण हो, वह इस संबंध के लिए राजी हो गए हैं। यदि तुम किसी अन्य जाति के होते, तो वह यह रिश्ता कभी भी मंजूर नहीं करते।"

यदि पांडेजी को पता चला कि शबनम आधी हिंदू और आधी...। मेरा मन अतीत की धूल भरी गलियों में भटक जाता है। मैं एक बार फिर से सोलह-सत्रह वर्ष का किशोर बन जाता हूं। मैं कालखंड के उस छोर पर पहुंच जाता हूं, जहां से यह शानदार कहानी प्रारंभ हुई थी।

तब मैं बी० ए० फाइनल में था। हम लोग पुरानी दिल्ली के उस इलाके में रहते थे, जहां हिंदू-मुसलमानों के मोहल्ले एकदम आसपास हैं। सदियों से दोनों संप्रदायों के लोग प्रेम, सद्भाव, भाईचारे से रहते आए थे। पर भारत के विभाजन के बाद देश में सांप्रदायिक घृणा और विद्वेष की ऐसी आंधी चली कि उसमें सारे मानवीय मूल्य सूखे पत्तों की भांति उड़ गए। आए दिन दंगे और मारामारी होती रहती थी।

एक दिन मैं कालिज से लौटकर चाय पीकर अपनी बैठक में बैठा था। बैठक का दरवाजा सड़क की तरफ खुलता था। तभी मम्मी आईं और उन्होंने मुझसे पान लाने के लिए कहा।

बाजार पास ही था। मैं पान वाले की दूकान पर गया। उसकी दूकान एक ऐसे संधिस्थल पर थी, जहां एक ओर हिंदुओं का मोहल्ला था और दूसरी ओर मुसलमानों का। अभी मैं पनवाड़ी से पान बंधवा रहा था कि चारों तरफ अफरातफरी और मारामारी शुरू हो गई।

"चल गई...गोली चल गई।" लोग चीखते हुए इधर-उधर भाग रहे थे।

पलभर में सारा बाजार फटाफट बंद हो गया। मैं भी पान लेकर बिना पैसे दिए घर की तरफ भागा। जैसे ही मैं अपने घर के पास पहुंचा, मैंने देखा कि हिंदुओं के मोहल्ले से एक लड़की बदहवास-सी भागी चली आ रही है। दो-तीन गुंडे हाथों में छुरे लिए उसके पीछे भाग रहे हैं। जिंदगी और मौत के बीच थोड़ा-सा ही फासला था।

"बचाओ...बचाओ—। कसाई के हाथ पड़ी गाय जैसी वह चीख रही थी। जैसे ही वह मेरे पास आई, मैंने उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी बैठक में घसीट लिया और दरवाजा अंदर से बंद कर लिया।

तभी वे दोनों गुंडे भी वहां पहुंच गए। उन्होंने मेरा दरवाजा पीटना शुरू कर दिया। वे चीख रहे थे, "पंडितजी, यह मुसलमान है। इसे बाहर निकालो। हम इसे जान से मार डालेंगे।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह लड़की एकदम ऐसे थरथर कांप रही थी, जैसे बिल्ली के सामने कबूतरी।

"हम दस तक गिनते हैं। अगर दरवाजा नहीं खुला, तो हम आपके घर को आग लगा देंगे, समझे।" वे दोनों बाहर चीख रहे थे।

वह लड़की भयभीत होकर मुझसे चिपट गई और बोली, 'मैं जाती हूं। आप लोग मेरे खातिर...।" वह अपनी बात पूरी नहीं कर सकी। उसकी आंखों में आंसू भरे थे।

"देखो, हमारा धर्म कहता है कि शरणागत की रक्षा के लिए अगर अपनी जान भी देनी पड़े, तो कोई हर्ज नहीं हैं।" मैंने उसके सिर पर हाथ फेरा और उसे अपने शरीर से अलग किया।

तब तक मां वहां आ गईं। वह बोलीं, इस मलेच्छ लड़की के लिए तू...।"

"मां, यह आदमजात है। इंसानों में कोई मलेच्छ या कोई श्रेष्ठ नहीं होता। हम सब समान हैं, बराबर हैं। मैं जान पर खेल जाऊंगा, पर इसका बाल-बांका नहीं होने दूंगा।" मैंने निर्णायक स्वर में कहा।

कुछ देर में गली में काफी भीड़ इकट्ठी हो गई। वे हिंदुओं के समर्थन और मुसलमानों के विरोध में नारे लगा रहे थे। प्रतिपल स्थिति विकट और जटिल होती जा रही थी। उस समय पापा बम्बई गए थे, अन्यथा उन जैसे कट्टरपंथी के सामने मैं यह दुस्साहसपूर्ण काम नहीं कर सकता था।

देर तक गली में हंगामा होता रहा। भीड़ हमारे घर को तहस-नहस करने की धमकी देती रही। पर तभी ईश्वर के वरदान-सी पुलिस की गाड़ी आई, जिससे उद्घोषणा हो रही थी—शहर में अनिश्चितकाल का कर्फ्यू लग गया है। लोगों से अनुरोध है कि वे तुरंत अपने-अपने घरों में चले जाएं। सरकार का आदेश है कि दंगाइयों को देखते ही गोली मार दी जाए।

भीड़ छंट गई। लड़की बच गई। दो दिन तक शहर में कर्फ्यू रहा। दूसरे दिन दोपहर तीन बजे दो घंटे के लिए कर्फ्यू में ढील दी गई। उसमें मैं लड़की को उसके घर सुरक्षित पहुंचा आया। उसके घर वाले उसे जीवित देखकर आश्चर्य से दांतों तले उंगली दबा गए। जब उन्होंने यह सुना कि एक हिंदू ने उसकी जान बचाई है और दंगे के समय उसे अपने घर में पनाह दी है, तो वे जैसे कृतज्ञता से जमीन पर बिछ गए।

उस लड़की का नाम नासिरा था। उस दिन वह हिंदुओं के मोहल्ले में डा० कपूर से अपनी बीमार मां के लिए दवा लेने आई थी और दंगे में फंस गई थी।

बाद में वही लड़की मेरी जिंदगी में आ गई। तत्पश्चात् हम दोनों गुपचुप मिलते रहे। प्यार हो गया हम दोनों में। जब हम लोगों ने शादी का फैसला किया, तो उसके घरवाले तो राजी हो गए, पर मेरे मम्मी-पापा ने एक स्वर में कहा, "तू हमारा धर्म, हमारा खानदान भ्रष्ट करेगा? नहीं, यह असंभव है।"

"पापा, आप जानते हैं कि मैं जो कुछ फैसला करता हूं, वह अन्तिम होता है।" मैंने शांत स्वर में कहा।

"अभी पिद्दीभर के हो और जिंदगी के बारे में अंतिम फैसले भी करने लगे। बकवास बंद करो। भूल जाओ उस छोकरी को। वह हमारे घर की बहू कभी नहीं बन सकती।" पापा के स्वर में घनी कड़वाहट थी।

"आखिर क्यों, पापा ?" मैंने एक प्रश्न पूछा।

"इसलिए कि वह विधर्मी है।"

"पापा, मुझे एक बात का उत्तर दीजिए। अगर उत्तर संतोषजनक हुआ, तो मैं इस लड़की को भूल जाऊंगा।"

"पूछो !"

"प्रेम के मार्ग में धर्म कैसे आड़े आता है ?"

मेरा प्रश्न क्या था, एक ऐसी तेज गेंद थी, जिसने पापा की जिद की तीनों विकटें धराशायी कर दीं। उनसे कोई उत्तर देते नहीं बना। मैं अपने निर्णय पर डटा रहा।

मम्मी-पापा की इच्छा के विरुद्ध मैंने और नासिरा ने कोर्ट मैरिज कर ली। मुझे घर से निकाल दिया गया। मुझे इस बात का तनिक भी अफसोस नहीं है। मुझे तो इस बात की प्रसन्नता है कि हमारा यह कथित अधार्मिक प्रेम-विवाह पूर्ण रूप से सफल रहा। हम एक आदर्श पति-पत्नी की तरह रह रहे हैं। कभी झगड़ा-टंटा या टकराव नहीं हुआ। हमारे दाम्पत्य संबंध गहरी समझ और समझौते पर आधारित हैं।

"क्या सो गए ? पांडेजी आ गए हैं।" नासिरा ने आकर सूचना दी, तो मैं तीस वर्ष की यात्रा पूरी कर वर्तमान में आ गया।

मैं उठा। मैंने पांडेजी, उनकी पत्नी तथा बेटी का स्वागत-सत्कार किया। उन्हें आदर से बिठाया। नासिरा चाय ले आई। शबनम भी उनके आतिथ्य सत्कार में जुट गई।

अभी हम लोगों ने चाय पीना और औपचारिक वार्तालाप शुरू ही किया था कि राकेश भी आ गया। वह सीधे अपने दफ्तर से आ रहा था।

हम लोग पहली बार पांडे परिवार से मिल रहे थे। वे काफी सुलझे, सुसंस्कृत और मृदुभाषी लोग थे।

राजनीति, मौसम, क्रिकेट से फिसलती बातें शबनम और राकेश के संबंधों तक पहुंच गईं।

"शर्माजी, आजकल तो वह जमाना आ गया है कि लड़के-लड़कियों को अपने भविष्य के विषय में स्वयं फैसले करने चाहिएं। अब इन दोनों ने प्रेम-विवाह करने का निश्चय ही कर लिया है, तो हम कौन होते हैं बीच में टांग फंसाने वाले।" पांडेजी ने हंसते हुए कहा।

"हमसे पूछकर, हमारी अनुमति मांगकर इन लोगों ने हमें इज्जत दी है।" मैंने गिरह लगाई।

"भाई साहब, एक बात पूछूं बुरा तो नहीं मानेंगे ?" राकेश की मम्मी बोलीं।

"पूछिए। अपनों से बुरा मानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।" मैंने कहा।

"आप लोग ब्राह्मण हैं, फिर आपने यह नासिरा, शबनम आदि मुसलमानी नाम क्यों रखे हुए हैं?" श्रीमती पांडे ने पूछा।

"ओ हां, मैं आपको खुद ही बताना चाहता था। असल में शबनम आधी हिंदू, आधी मुसलमान है," मैंने मज़ाक में सच्चाई का उद्घाटन कर दिया।

"क्या मतलब।" पांडेजी ऐसे चौंके जैसे उनका पांव सांप पर पड़ गया हो।

"जी बात यह है कि मेरी पत्नी नासिरा मुसलमान थी और हमने प्रेम-विवाह किया है।" मैंने रहस्योद्घाटन कर दिया।

यह रहस्योद्घाटन क्या, एक भीषण विस्फोट था। पांडे दंपत्ति ने प्लेटों से अपने हाथ खींच लिए। अधपिए चाय के प्याले मेज पर रख दिए। फिर वे दोनों खड़े हो गए।

पांडेजी ने विकृत मुंह बनाकर कहा, "यह शादी नहीं हो सकती।"

श्रीमती पांडे बोलीं, "मेरा तो धर्म भ्रष्ट कर दिया इन लोगों ने।"

मैं मुस्कराया और बोला, "पांडेजी, तीस वर्ष पूर्व मैंने मम्मी-पापा से एक प्रश्न पूछा था, जिसका वे कोई उत्तर नहीं दे पाए थे। आज वही प्रश्न मैं आपसे पूछता हूं। यदि आपने संतोषजनक उत्तर दे दिया, तो मैं अपनी बेटी को समझा लूंगा।"

"पूछिए।" पांडेजी ने रूखे स्वर में कहा।

"आखिर प्रेम और मिलन के मार्ग में धर्म कैसे आड़े आता है?" मैंने शांत स्वर में पूछा।

पांडेजी बगलें झांकने लगे। उनसे कोई उत्तर देते नहीं बना।

"देखिए, हिंदू-मुसलमानों की संस्कृति, रहन-सहन, तौर-तरीके सब अलग-अलग हैं," श्रीमती पांडे बोलीं।

"देखिए, मैं आपसे इस मसले पर बहस या वाद-विवाद नहीं करना चाहता। यह शादी नहीं हो सकती।" पांडेजी ने अपना फैसला सुना दिया।

"पांडेजी, आप तो अपने अखबार में धार्मिक संकीर्णता और सांप्रदायिकता के विरुद्ध लिखते रहे हैं। आप तो अपने लेखों में अंतर्राष्ट्रीय और अंतर्जातीय विवाहों की हिमायत करते रहे हैं।" मैंने उनकी घेराबंदी की।

"देखिए, लिखना और बात है, और उसको अपनी जिंदगी में लागू करना...।"

इससे पूर्व कि पांडेजी अपनी बात पूरी कर पाते, नासिरा अनायास कह गई, "तो आपकी जिंदगी की फिलासफी हाथी के दांतों जैसी है। खाने के और, दिखाने के और।"

पांडेजी सकपका गए। मैं अचकचा गया। मैंने नासिरा को प्यार से डांटा, "घर आए मेहमानों का अपमान करना बदतमीजी है।"

"मुझे अफसोस है, माफी चाहती हूं।" नासिरा ने सिर झुका लिया।

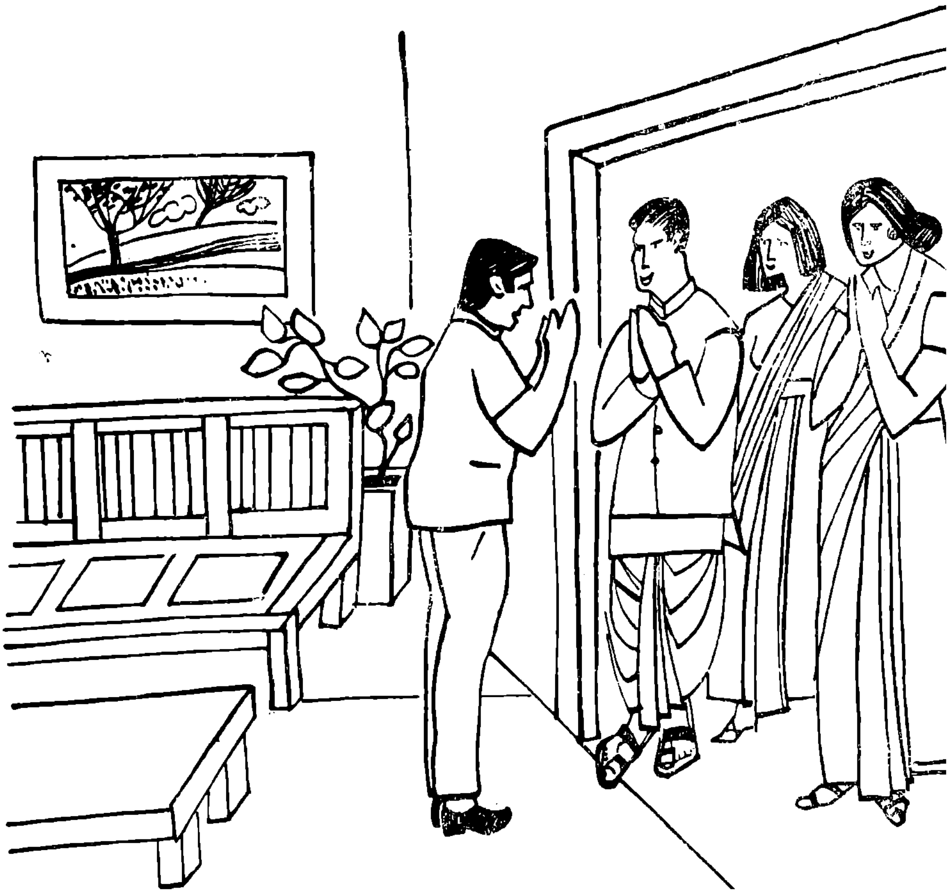
"राकेश की मां, चलिए।" पांडेजी दरवाजे की ओर बढ़ गए।

"पापा!" सोफे पर बैठे राकेश ने आवाज दी।

"क्या है? चलो...।" पांडेजी बिगड़ गए।

"पापा, यह विवाह होगा। मैं शादी शबनम से ही करूंगा।" राकेश ने निर्णायक स्व कहा।

मैं राकेश के सामने नतमस्तक हो गया। मैं समझ गया। इतिहास अपने को दोहराने रहा था।



11. चुगली

सुरेश और महेश दो भाई थे। सुरेश आठवीं कक्षा में था और महेश सातवीं में। हालांकि सुरेश महेश से दो वर्ष बड़ा था, फिर भी, पढ़ाई में दोनों भाइयों में सिर्फ एक ही कक्षा का अंतर था।

शुरू में महेश सुरेश से दो कक्षा पीछे था। परन्तु तीसरी कक्षा में उसने अपनी प्रतिभा और ज्ञान से अध्यापकों को इतना प्रभावित किया कि प्रधानाचार्य ने उसे 'डबल प्रमोशन' देकर पांचवी कक्षा में कर दिया।

महेश के मम्मी-पापा बहुत खुश हुए। उन्होंने महेश को उपहार में एक साइकिल खरीद कर दी। साथ ही कुछ रुपये भी दिए, ताकि वह उनसे मिठाई खरीदकर अपने दोस्तों को खिला सके।

सबने महेश की प्रशंसा की। पर सुरेश उदास हो गया। जब पापा महेश की पीठ ठोंक रहे थे, तो सुरेश ने व्यंग्य से कहा, "पापा, अगर इसी रफ्तार से महेश 'क्लासेज जम्प' करता रहा, तो वह मुझसे आगे निकल जाएगा!" सब हंस पड़े थे।

महेश मेधावी छात्र ही नहीं, घर में मम्मी-पापा का लाडला भी था। वह तीन बच्चों में सबसे छोटा था। बड़ी दीदी। फिर सुरेश। अंत में वह। परिवार में सबसे छोटे को अतिरिक्त स्नेह तो मिलता ही है।

महेश को पढ़ने का विशेष शौक था। वह अपने जेब खर्च से पैसे बचाकर किताबें खरीद लाता। सुरेश अपने पैसों से सिर्फ चाकलेट और आइसक्रीम खरीदता। पापा दफ्तर से हर रोज पत्रिकाएं लाते। जबकि सुरेश टेलीविजन से चिपका होता, महेश पत्रिकाएं पढ़ रहा होता।

दोनों भाइयों की प्रकृति में एक और अंतर था। महेश अपनी पढ़ाई में इतना व्यस्त रहता कि उसे दूसरों के मामले में हस्तक्षेप करने का अवकाश ही नहीं मिलता। इसके विपरीत सुरेश हर समय दूसरों की बातें सुनता और इधर की उधर और उधर की इधर करता रहता। कई बार उसकी इस आदत के परिणामस्वरूप घर में चखचख हो जाती।

सुरेश में चुगली करने की खराब आदत बढ़ती जा रही थी। वह मम्मी की बात पापा से, सुधा दीदी की बात मम्मी से, महेश की बात पापा को बताता रहता। अक्सर ये बातें गलत ही निकलतीं, पर इनसे अप्रियता तो पैदा होती ही थी। महेश छोटा भाई था। फिर भी, उसने एक दिन सुरेश को समझाया, "भैया, चुगलखोरी करना अच्छी आदत नहीं है। आप ऐसा मत किया करें।"

सुरेश पर इस सीख का कोई असर नहीं हुआ। उल्टे उसने महेश को फटकार दिया। डांट कर बोला, "छोटे भाई होकर बड़े भाई को शिक्षा देते हुए शर्म नहीं आती। चुप करो। मैं अपना भला-बुरा समझता हूं।"

महेश अपना-सा मुंह लेकर रह गया। उसे विश्वास था कि जल्दी ही सुरेश भाई को टक्कर लगेगी और उन्हें अक्ल आ जाएगी।

वसंत के दिन स्कूल का वार्षिकोत्सव मनाया जाना था। उसके लिए स्कूल में खूब जोर-शोर से तैयारियां हो रहीं थीं। महेश भी उन तैयारियों में भाग ले रहा था। इसी कारण वह छुट्टी के बाद स्कूल में दो घंटे तक रुकता।

एक दिन सुरेश स्कूल से लौटा और आते ही मां से बोला, "मम्मी गजब हो गया।"

"क्या हुआ ?" मां घबरा गई।

"महेश चोरी करते रंगे हाथों पकड़ा गया। प्रधानाध्यापक उस पर खूब नाराज हो रहे थे। वह उसे स्कूल से निकाल देंगे...।" सुरेश ने कहा।

"यह तू क्या बक रहा है रे !" मां को सुरेश की बात पर विश्वास नहीं हुआ।

"मां, मैं सच कह रहा हूं। मैंने अपने कानों से यह सब सुना है। महेश प्रधानाचार्य के सामने रो रहा था और गिड़-गिड़ाकर माफी मांग रहा था।" सुरेश ने पूरे विश्वास के साथ कहा।

तब तक पापा भी आ गए। वह बोले, "क्या बात है ?"

मां ने बड़े दुखी स्वर में कहा, "महेश ने हमारी नाक कटवा दी।"

"क्यों क्या हुआ ?" पापा ने चिंतित स्वर में पूछा।

"सुरेश खबर लाया है कि महेश ने स्कूल में चोरी की है और प्रिंसीपल साहब ने उसे स्कूल से निकालने का फैसला कर लिया है।" मम्मी ने कहा।

"यह कैसे हो सकता है ?" पापा ने शंका व्यक्त की।

"पापा, मैंने अपनी आंखों से देखा है...। अपने कानों से सुना है।" सुरेश बोला।

सुरेश की निश्चितता के सामने पापा को विश्वास करना पड़ा। पहले तो निराश हो उन्होंने दोनों हाथों से अपना माथा पकड़ा। फिर क्रोध में भरकर वह दहाड़े, "आने दो उसे। मैं उसकी अच्छी खबर लूंगा।"

पापा महेश से गुस्सा थे। इससे सुरेश को बड़ा मजा आ रहा था। वह अंदर-ही-अंदर खुश हो रहा था।

करीब सवा पांच बजे महेश स्कूल से लौटा, तो पापा ने उसे बुलाया और आवेश में उसे एक चांटा रसीद कर दिया।

महेश हक्का-बक्का रह गया। वह अचकचाकर बोला, "क्या हुआ पापा ?"

"घर में तुम्हें किस बात की कमी है, जो स्कूल में चोरी करते हो। चोरी करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई।" पापा गरजे।

महेश ने देखा सुरेश पापा के पास खड़ा मुस्करा रहा है। वह समझ गया। तो सुरेश भाई ने चुगली लगाई है। उसी का नतीजा है यह। उसने पूछा, "पापा, आपको यह सूचना किसने दी कि मैंने चोरी की है ?"

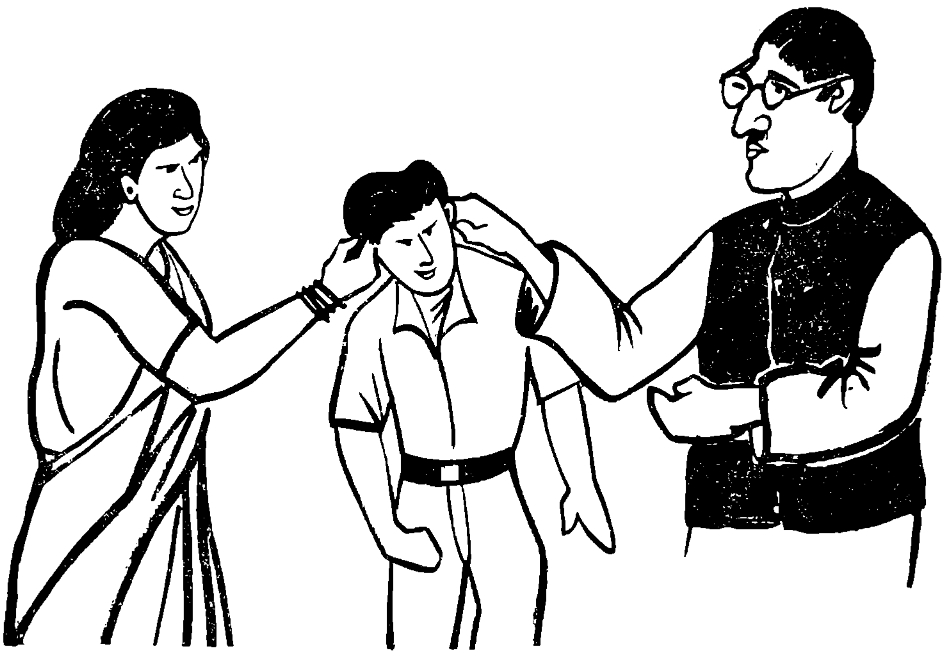
"सुरेश ने आकर बताया था।" मम्मी बोलीं।

"सुरेश भाई, आपको यह बात कैसे पता चली ?" महेश ने सुरेश से पूछा।

सुरेश ने कहा, "छुट्टी के बाद मैं तुम्हारे कमरे में गया। वहां दरवाजा लगभग बंद था, लेकिन अंदर की आवाजें बाहर सुनाई पड़ रही थीं। मैं तुम्हारी आवाज पहचान गया। तुम गिड़गिड़ा रहे थे—"सर, मैंने चोरी नहीं की। मैं चोर नहीं हूं और सर कह रहे थे—नहीं, हमने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ा है। तुम चोर हो। हम तुम्हें स्कूल से निकाल देंगे।"

"सुरेश भाई, क्या तुम्हें विश्वास है कि वह आवाज हमारे प्रिंसीपल साहब की ही थी ?" महेश ने पूछा। इस बार सुरेश सोच में पड़ गया।

"आखिर यह चक्कर क्या है ?" पापा ने पूछा।



महेश हंस पड़ा। फिर बोला, "पापा, हम स्कूल के वार्षिकोत्सव पर एक नाटक खेलेंगे—चोरी का फल। अपने कमरे में हम उसी नाटक की रिहर्सल कर रहे थे। नाटक में मैं चोर और सुधीर प्रधानाचार्य बना है।"

महेश की बात सुनकर मम्मी-पापा मुस्कराए। उन्होंने घूरकर सुरेश को देखा। सुरेश घबराया। उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। उसने देखा—एक तरफ से मम्मी और दूसरी तरफ से पापा का हाथ बढ़ा है और उसके दोनों कान पकड़ लिए गए हैं।

"सॉरी, मम्मी-पापा।" कानों के खिचने से पूर्व ही सुरेश बोल पड़ा।

"आगे से किसी की चुगली तो नहीं करोगे ?" सुधा दीदी ने पूछा।

"नहीं, मैं वायदा करता हूं।" सुरेश ने उत्तर दिया।

उसके कानों को छोड़ दिया गया। उसके बाद सुरेश ने चुगली करना छोड़ दिया।

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

